मुद्रकः—
श्रीजैनोदय प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
चौमुखीपुल रतला

दो शब्द

महानुभावो ! श्रीमज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्यश्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहेब के संग्रहित व्याख्यानों के आधार पर २९ पुष्प तो मंडल पहले प्रकाशित कर चुका है। अब यह ३० वां पुष्प राजकोट व्याख्यान भाग तीसरा पाठकों के कर कमलों में पहुँचाते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

स्वर्गीय आचार्यवर एक युग प्रवर्त्तक पुरुष हुए हैं। उन्होंने समाज को एक नये ढाँचे मे ढाला है तथा द्रव्य क्षेत्र काल भाव सच्चा उपयोग समझाया है। आप लोगो के सत्प्रयास से मण्डल को व्याख्यान संग्रह कराने का अवसर मिला था। यह कार्य अत्यन्त समाज हितकारी हुआ है।

आर्य देश बहुत बड़ा है सब जगह मुनिगण पहुंच नही सकते है। ऐसी स्थिति में यह साहित्य बड़ा ही उपयोगी हुआ है। जनता की प्रबल इच्छा को देखते हुए यह तीसरा भाग प्रस्तुत करना पडा है। अभी अमूल्य निधि अप्रकाशित है। भविष्य आपके हाथों में पहुँचावेगा। इस पुस्तक की कीमत लागत से कम रक्खी गई है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पूज्यश्री जो व्याख्यान फरमाते थे, वे साधु भाषा में ही होते थे। फिर भी संग्राहक या संपादक द्वारा भाषा एवं भाव सम्बन्धी भूल हो गई होवे तो ऐसी भूल के लिए संग्राहक और सम्पादक ही उत्तर दायी हैं न कि पूज्यश्री। अतः जो महानुभाव हमे ऐसी भूलें बतावेगे हम उनका आभार मानेंगे और आगामी संस्करण मे इस त्रुटि को निकालने का यथा शक्य प्रयत्न करेंगे। इत्यलम्

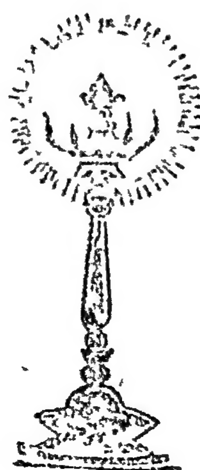
भवदीय—

बालचन्द— हीरालाल नांदेचा

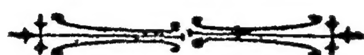
वाइस प्रेसीडेन्ट *प्रेसीडेन्ट*

विषय सूची

क्रमांक विषय



दुःख में उत्थान और सुख ॅ पतन



अनन्त जिनेश्वर नित नमूँ ।

प्रार्थ —

यह भगवान् अनन्त नाथ चौदहवें तीर्थंकर की प्रार्थना है। आत्मा को परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिये । उसके पुरुपार्थ की यही चरम सीमा है। परमात्मा के साक्षात्कार के लिये जो प्रयत्न है वही परम पुरुषार्थ कहा जाता है। इस मानव जीवन मे जितने क्षण प्रभु का साक्षात्कार करने के प्रयत्न मे लगाये जाते है वे क्षण सार्थक गिने जाते है। बाकी का सारा समय निरर्थक है। परमात्मा से साक्षात्कार करने के लिए जितने उपाय शास्त्र में बताये गये है वे सब एक साथ न तो कहे जा सकते हैं और न उनका प्रयोग ही किया जा सकता है। किन्तु एक उपाय ऐसा है जो सब के लिये सुसाध्य हैं। वह है परमात्मा की प्रार्थना। यदि तन्मयता पूर्वक प्रार्थना की जा सके तो जो तत्त्व अन्य उपायो से प्राप्त किये जा सकते है वे प्रार्थना से भी मिल सकते है। ज्ञानियो का कथन है कि ऐसा भूतकाल मे हुआ है, वर्तमान मे होता है और भविष्य मे होता रहेगा। ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति-मार्ग मे से प्रार्थना द्वारा प्रभु का साक्षात्कार करना भक्ति मार्ग है। जो कम पढ़े लिखों के लिये भी बड़ा उपयोगी और सुलभ है।

शुद्ध अंतः करण से परमात्मा की प्रार्थना करने के लिये सबसे पहला काम है—उपासक द्वारा अपने उपास्य की पहचान करना। उपास्य का स्वरूप समझे बिना की गई प्रार्थना से इष्ट-सिद्धि नहीं होती। कहा है—

यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।

भावशून्य क्रिया फलदायी नहीं होती। अतः परमात्मा का स्वरूप जानना सब से प्रथम और आवश्यक काम है।

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि परमात्मा को पहचाना किस प्रकार जाय? उसे पहचानने का क्या तरीका है? यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो परमात्मा को पहचानना कोई कठिन काम नहीं है। बड़ा सरल काम है। उसको पहचानने के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। वह हमारे निकटतम है। किन्तु है वह अत्यन्त सूक्ष्म। सूक्ष्म वस्तु को जानने के लिए औजार भी सूक्ष्म चाहिये। बुद्धि के बिना वह नहीं जाना जा सकता। सूक्ष्म बुद्धि उसके जानने के लिए अपेक्षित है। उसके स्वरूप का वर्णन करते हुए भक्त ने कहा है—

सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु चिदानन्द चिद्रूप।
पवन शब्द आकाश थी सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप॥

जो वस्तु दूर होती है उसे ढूंढने के लिए इधर उधर भटकना पड़ता है। किन्तु जो हमारे पास है उसे कहाँ ढूंढने जाना? जो सूक्ष्म वस्तु होती है वह दूर नहीं हो सकती।

परमात्मा हमारे समीप किस प्रकार है इस बात को समझाने के लिए उपनिषद् मे एक कथा है। एक ब्रह्मचारी को

ईश या आत्मा का साक्षात्कार न हो सकने से बड़ी उदासी आ गई। कभी २ उदासी भी कार्य-साधन में बड़ी उपयोगी सिद्ध हो जाती है। उसे इतनी उदासी आ गई कि उसका खाना पीना भी छूट गया। उसके साथी उससे कहने लगे कि तू भोजन क्यों नहीं करता है ? इतना उदास क्यो रहता है ? उसने उत्तर दिया कि मुझे ईश्वर साक्षात्कार न होने से उदासी है। किसी काम में मेरा मन नही लगता। तब अग्निदेव—आत्माग्नि ने प्रकट होकर उसे कहा कि अरे! ईश तो तेरे समीप ही है। तू दुःख क्यो करता है। तब उस ब्रह्मचारी ने अग्निदेव से पूछा कि ईश मेरे समीप कैसे है ? मुझे समझाओ।

अग्निदेव ने उसे समझाना आरम्भ किया। प्राण ब्रह्म है, कं ब्रह्म है और खं ब्रह्म है। यानी प्राण भी ब्रह्म है, सुख भी ब्रह्म है और आकाश भी ब्रह्म है। ब्रह्मचारी ने शंका की कि प्राण ब्रह्म है यह तो मेरी समझ मे आता है। मगर सुख और आकाश के ब्रह्म होने की बात मेरी बुद्धि मे नही उतरती। सुख ऐसा भी होता है, जो आरंभ मे सुखरूप मालूम होता है और पश्चात् दुःखरूप मे परिणत हो जाता है। फिर सुख ब्रह्म कैसे है ? और आकाश जड़रूप है वह भी ब्रह्म कैसे ?

ब्रह्मचारी की शंका सुनकर अग्निदेव ने उससे कहा कि तू मेरे कथन का आशय नहीं समझा है। आशय न समझने से तूने प्राण सुख और आकाश मे भेद किया है। सुन—

स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः।

अग्निदेव ने कहा—हम जिसे सुख कहते हैं उसी को आकाश भी कहते हैं और जिसको आकाश कहते हैं उसको सुख भी। सुख विशेष्य है और आकाश विशेषण है। जिस प्रकार आकाश अनन्त और अविनाशी है उसी प्रकार जो सुख अनन्त और अविनाशी हो वही सच्चा सुख है। जो सुख अल्प और विनाशी हो वह वस्तुतः सुख नहीं किन्तु दुःख ही है। नाशवान् और क्षणिक सुख को हम सुख नहीं कहते। अतः हे ब्रह्मचारी! तू उस अविनाशी और अनन्त सुख की तलाश कर! इसी प्रकार खाली जगह (पोलार) को हम आकाश नहीं कहते किन्तु जो अनन्त और अविनाशी सुख है उसको हम आकाश कहते हैं।

कं ब्रह्म और खं ब्रह्म की बात हो चुकी। अब प्राण ब्रह्म की बात बताते हैं। अंतःकरण को कं ब्रह्म और खं ब्रह्म का ज्ञान होता है। जो सुख रूप अकाश है, प्राण उसका स्थूल रूप है। प्राण की सहायता के बिना उस सुख की उपासना नहीं की जा सकती। उपासक के लिए उपास्य की उपासना करने के लिए कोई साधन अपेक्षित होता है। बिना साधन के उपासना नहीं हो सकती। श्वास उच्छ्वास और इन्द्रियां आदि जो प्राण हैं वे उस सुख की उपासना करने मे साधन है। जब तक आत्मा प्राणो को व्यर्थ नहीं मानता तब तक वह इन इन्द्रियादि प्राणो को ईश्वरीय देन मानकर उनको उसके समर्पण करता रहता है। अर्थात् हाथ, पैर, आंख, कान, नाक, वाणी आदि सब साधनों से जन कल्याण के कार्य करता है और निरभिमानी रहता है। इस तरह प्राणो को ईश्वरार्पण करता है।

ये आंख कान नाक आदि प्राण इस बालिस्त भर मुख के अधीन है। सारे शरीर मे मुख बड़ा करामाती है। बाकी शरीर तो ढांचा मात्र है। जब प्र... ईश्वरार्पण कर दिये जाते हैं तब मुखपर ऐसी दिव्य आभा छा जाती है जो अन्य सब तेजो को हतप्रभ बना देती है। अत: हे ब्रह्मचारी ! प्राण मुख और आकाश को परमात्मा का रूप समझो और उसके लिए इधर उधर मत भटको। अपने भीतर उसकी खोज करो। तुम मे प्राण, मुख और आकाश तीनो विद्यमान हैं।

आत्मा और परमात्मा को एक कैसे मानना ? इसका क्या तरीका है ? इसका सबसे सुगम और सरल तरीका यह है कि आकाश की तरह अनन्त और अविनाशी आत्मा को सान्त और नाशवान् मानना छोड़ दो।

आत्मा और परमात्मा की एकता साधने का उपाय अब जैन शास्त्रानुसार बताता हूँ।

। —

अनाथीमुनि राजा श्रेणिक के समक्ष यह बात रख रहे हैं कि हे राजन् ! यह आत्मा दूसरे लोगो की शरण मे जाकर अनाथ बन रहा है। जब यह आत्मा अपनी चिद्शक्ति और ज्ञान शक्ति को पहचान कर उनकी शरण में जायगा तब नाथ बन जायगा। उस शक्ति को देखने के लिये हृदयमन्थन की जरूरत है। हृदयमंथन करने से उसमें से ज्ञानशक्तिरूप मक्खन हाथ लगेगा। वर्तमान मे लोग उस शक्तिरूप मक्खन को भूल कर बाहरी साधन रूप छाछ के पीछे भागादौड़ी मचा रहे है। यही भूल है। जब छाछ का ध्यान

छोड़कर मक्खन का ध्यान किया जायगा तब पता लगेगा कि हम कौन है और हमारे में कितनी शक्ति भरी पड़ी है।

अनाथी मुनि श्रेणिक को बता रहे हैं कि मेरे यहां सांसारिक ऋद्धि की किसी प्रकार कमी न थी। मे कुटुम्बियों ने सब उपायों से मेरी व्याधि मिटाने के लिए भरसक प्रयत्न किये मगर वे सफल न हुए। मुझे उनके उपायों से शान्ति न मिली। तब मुझे ज्ञान हुआ कि यह सारा दुःख मेरी अनाथता से है। जितना जितना मैं संसार के पदार्थों के निकट जाता हूं उतना उतना वे मुझसे दूर भागते है। जितना मैं उनमें ममत्व धारण करता हूँ उतना पराधीन-अनाथ होता जाता हूँ।

राजन्! इस संसार में स्त्री का सम्बन्ध बहुत निकट का माना जाता है। स्त्री सुख का साधन मानी जाती है। स्त्री अपने पति की बड़ी सेवा करती है। उनके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहती है। लेकिन मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि यह समझ भी भूल भरी है। सुनो—

भारिया मे महाराय अणुरत्ता अणुव्वया।
अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं उरं मे परिसिंचइ॥
अंन्न पाणं च न्हाणं च गन्धमल्लं विलेवणं।
मए णायमणायं वा सा बाला नोवभुंजइ।
खणं पि मे महाराय पासाओ मे न फिट्टइ
न या दुक्खा विमोयन्ति एसा मज्झ अणाहया।

हे राजन्! जो स्त्री सुख का साधन समझी जाती है वह किस प्रकार अनाथता में वृद्धि करती है यह मैं तुम को बताता हूँ। तुम

मुझे निमंत्रण देते हो कि चलो मेरे राज्य मे, मै सुन्दर स्त्रियो से आपका लग्न करा दूंगा तथा सुख के अन्य सारे साधन जुटा दूंगा। लेकिन इस कथन का उत्तर सुनो।

मेरे भार्या थी। वह पतिव्रता और मुझ पर बहुत अनुरक्ता भी थी। वह पति को सर्वस्व समझती थी। उसके लिए पति ही धर्म और नियम था। इसके सिवाय कुछ जानती न थी। वह अपने सुख को सुख नहीं समझती थी किन्तु पति के सुख को अपना सुख मानती थी। जब युवावस्था मे रोग के कारण मैं पीड़ित था तब वह बहुत दुःखी रहती थी। उसके मन मे सदा यह भावना रहती थी कि मेरे पति स्वस्थ और सुखी बने रहे। किन्तु उसका वश न चलता था। मुझे दुःखी देखकर उसकी आँखों मे गंगा-यमुना बहती रहती थी। जब वह मेरे समीप बैठती तो उसके आंसुओं से मेरा हृदय-स्थल भीग जाता था। मेरे घर मे भोजनादि सामग्री की कमी न थी। किन्तु मेरे दुःख के कारण वे सब वस्तुएँ उसके लिए विष के समान बनी हुई थी। अनेक प्रकार के शक्ति-दायक पेय पदार्थ भी मेरे यहाँ विद्यमान थे किन्तु वह किसी का उपयोग न करती थी। सब प्रकार के सुगन्धित द्रव्यो का भी उसने त्याग कर दिया था। सुवर्ण-मोती आदि के दागिने मेरे यहाँ थे। इन से भी पुष्प की माला बढ़कर मानी जाती है। पुष्पमाला पहनना भी मेरी स्त्री ने छोड़ दिया था। मस्तक पर बिन्दी लगाना आदि सर्व प्रकार का शृङ्गार उसने मेरे दुःख के कारण त्यागा हुआ था।

कई स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं जो पति के देखते खाना-पीना आदि छोड़ देती है। उसे यह बताना चाहती हैं कि तुम्हारे दुः

मे हम कितनी दुःखी हैं। परन्तु पति की नजर बचा कर खा-पी लेती है मगर मेरी स्त्री ऐसी मिथ्याचारिणी न थी। वह मेरी जान और अजान मे न खाती थी न पीती थी।

प्रश्न होता है कि उनकी जान मे वह खाती-पीती, पहनती ओढ़ती न थी यह मालूम हो सकता है। किन्तु इनकी अजान मे भी न खाती-पीती, यह कैसे ज्ञात हो सकता है? इसका समाधान करने के लिए बहुत समय चाहिए। किन्तु संक्षेप में थोड़ा कहता हूँ। यदि कोई स्त्री अजान मे खान-पान और शृङ्गारादि करती है तो उनका असर शरीर पर हुए बिना नहीं रहता। अनाथी मुनि का आशय यह है कि मेरी स्त्री का शरीर देखने से पता लगता था कि वह समक्ष या पीठ पीछे खान-पान, शृङ्गारादि न करती थी।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से और कह रहे है कि राजन्! मेरी स्त्री मुझे छोड़ कर एक क्षण भी विलग न रहती थी। सदा मेरे पास बैठी रहती थी। रोग के कारण जिस प्रकार मेरी निद्रा चली गई थी उसी प्रकार मेरे दुःख से दुःखी होकर वह भी रात दिन जागती रहती थी। उसकी निद्रा भी हवा हो गई थी मै सोया सोया विचार करता रहता कि यह पीड़ा मुझको है या इसको। और वह यह सोचा करती थी कि मै पति की अर्धाङ्गिनी हूँ। जब आधा अंग दुःखी है तो मै सुखी कैसे? काच के सामने जैसी वस्तु होती है वैसा उसमे प्रतिबिम्ब पड़ता है। मेरे दुःख की छाया उसमे स्पष्ट दिखाई देती थी। स्त्रियो की प्रशंसा के लिए जितने गुण आवश्यक होते है वे सब उसमे विद्यमान थे। इतनी गुणसम्पन्ना

होने पर भी मेरी स्त्री मेरी अनाथता न मिटा सकी। उस का सारा प्रयत्न निष्फल रहा।

ी के प्रयत्न से भी अनाथी मुनि का रोग न मिटा यह अच्छा हुआ या बुरा ? ऊपर ऊपर से सोचने पर तो यही मालूम होता है कि अनाथी मुनि को महान् वेदनीय कर्म का उदय था अतः उनका रोग न मिटा न शान्त हुआ। किन्तु अनाथी मुनि के कथन पर बारीकी से सोचने पर मालूम होता है कि भार्या के प्रयत्न से भी रोग न मिटा यह अच्छा ही हुआ। यदि स्त्री-प्रयत्न से रोग मिट जाता तो मैं ी का गुलाम बन जाता। मै समझने लगता कि यह मेरी नाथ है। मेरी उस पर श्रद्धा जम जाती। और मै आज जिस मुनिपद पर आरूढ़ हूँ वहां तक न पहुँच पाता।

श्रीमन्तों के लड़के कितने व्यसनो में फंसे रहते है। मैं भी उसी श्रेणी का होता। किन्तु विधिका विधान मेरे लिए कुछ और ही था। रोग न मिटना मेरे लिए गुणकारी हो गया।

ज्ञानी लोग कहते है कि—

सुख के माथे शिला पड़ो जो प्रभु से दूर ले जाय।
बलिहारी उस दुःख की जो प्रभु से देत मिलाय॥

वह सुख क्या काम का जो परमात्मा से दूर पटक देता है। वह दुःख ही अच्छा है जो परमात्मा से मिला देता है। यदि मनुष्य के पीछे दुःख न हो तो न मालूम वह क्या क्या न कर डाले। आज संसार मे जितनी बुराइयां दृष्टिगोचर होती हैं वे सब सुखी लोगों की उत्पन्न की हुई हैं। बुराइयो पर गौर से

विचार करेंगे तो निश्चय मानना पड़ेगा कि इनके उत्पादक और प्रचारक सुखी लोग है।

कुदरत के कानून का जितना सुखी लोग उल्लंघन करते हैं, उतना पशुपत्ती भी नहीं करते। सुखी लोग दुर्व्यसनो मे पड़ कर मर्यादा छोड़ देते है और हानिकारक पदार्थों का सेवन करते है। उदाहरणार्थ एक बीड़ी को ही लीजिये। धर्म और स्वास्थ्य दोनों खराब होते है। फिर भी बीड़ी पीने वाले लोग कहते है कि हम सुखी है अतः यदि हम न पियेंगे तो कौन पियेगा? अपने को सुखी मानने वाले अनेक लोग गादीतकियो के सहारे बैठ कर हुक्का गुड़गुड़ाया करते हैं। बिना भूख के अनेक प्रकार की मिठाइयां खाते है फिर उनको पचाने के लिए कई प्रकार के चूर्णों का उपयोग करते है। यह शरीर और हाथ पैर कुछ काम करने के लिए है। किन्तु सुखी लोग हाथपैरों से काम लेने मे अपना अपमान समझते है। इस प्रकार सुखी लोगो ने व्यसन और आलस्य से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक बुराइयां इस संसार मे फैलाई हैं। वे इन बुरी बातो को अपना कर और अधिक सुखी होने की कल्पना करते है।

इसी से अनाथी मुनि कहते है कि अच्छा हुआ जो मेरा रोग न मिटा। मेरे आत्मोत्थान के लिए वह रोग बड़ा साधक हुआ। उसने मुझ को जगा दिया। मै मोह निद्रा मे सोया हुआ था। रोग ने मेरी बांह पकड़ कर मुझे । दिया। उठकर मै अविनाशी पथ का पथिक बन गया।

कोई किसी का दुःख मिटाने मे समर्थ नहीं हो सकता। फिर भी यदि स्त्री की परिचर्या से दुःख मिट जाता तो मै इस भ्रम

का शिकारी बन जाता कि मेरी स्त्री ने मेरा दुःख मिटा दिया। वह निमित्त मात्र बनती। और मैं उसे दुःख नाश करने वाली मान बैठता। अनाथी मुनि के इस कथन पर आप लोग विचार करो। आपको कितनी भी सुन्दरी और अनुकूल प्रकृति वाली स्त्री मिले फिर भी यह मत मान बैठना कि वह आपके दुःख दर्द को मिटाने में समर्थ बन सकेगी। हां, कुछ निमित्त मात्र बन जायगी। किन्तु आपका किया कर्म आपको भुगतना पड़ेगा। यह याद रखना। इस लिए अपने पर ऐसा नाथ रखो जो आपकी अनाथता मिटा सके। प्रभु के सिवा अन्य कौन ऐसा नाथ हो सकता है? भक्त कहता है:—

मैं प्रभु पतित-पावन सुने।

हौं पतित तुम पतित-पावन, उभय बानक बने॥ मैं प्रभु०॥

भक्त अपनी अनाथता को पतित अवस्था के रूप में चित्रित कर के कहता है कि मुझ को कौन पवित्र बना सकता है? मुझे कौन नाथ बना सकता है? क्या धन दौलत, राजा रईस, माता पिता, कुटुम्ब परिवार और मित्र दोस्त मेरी पतितावस्था को मिटा सकते है? वे स्वयं इसी दशा में हैं। वे क्या मेरा उद्धार करेंगे? केवल परमात्मा परमेश्वर ही एक मात्र पतितपावन है और वही मेरी आत्मा को नीचे से ऊपर उठा सकते है। मैंने पुराने संतो से सुना है कि वह पतित-पावन है। मैं पतित हूँ और वह पतितपावन है फिर क्या चाहिए। दोनों की जोड़ी अच्छी बनी है। रोग भी है और डाक्टर भो है। अब क्या चाहिये? तेरा सहारा पकड़ने से मेरा अनादि कालीन जीर्ण रोग अवश्य मिट जायगा। यह भक्त का विचार है।

आप लोग मेरे पास आये है। क्या लेने आये है? और मैं क्या दे सकता हूँ! मै साधु ठहरा। जो कुछ था वह भी छोड़कर भिक्षु बन गया। अब आप सोचो कि मेरे पास किस आशा से आये हो। क्या इस आशा से आये हो कि कुछ संपत्ति प्राप्त हो जायगी? यदि यह आशा लेकर आये हो तो शायद आपको निराश होना पड़ेगा। मेरे पास सिवा आशीर्वाद के और कुछ नही है मगर साधु का आशीर्वाद प्राप्त करना भी सस्ता सौदा नही है। मै किसको आशीर्वाद दूं? क्या बीड़ी पीने को आशीर्वाद दूं या अन्य बुराइयो को? यदि ऐसी वस्तुओ के लिए आप आशीर्वाद चाहते है तब तो आपके साथ मै भी पाप का भागी बनूं और अपना साधुपद खो बैठू। ऐसा आशीर्वाद लेने आना भूल है। हम साधु लोग यह आशीर्वाद दे सकते है कि आप मे धर्म के जो अंकुर है वे वृद्धि पावे, फले और फूले। आपमें सद्‌गुणो की वृद्धि हो और दुर्गुणो की हानि हो, यह आशीर्वाद यदि चाहिए तो हम दे सकते है। फकीर के पास यही आशीर्वाद हो सकता है।

आप लोग फकीर शब्द सुन कर चौकियेगा नहीं। फकीर और साधु में शब्दों का अन्तर है। दोनो का अर्थ एक है। एक शायर फकीर का अर्थ इस प्रकार लगाता है:—

फे से फख्र काफ से कुदरत र से रहीम और ये से याद।
चार हरुफ है फकीर के जो पढ़े तो हो दिल शाद॥
फकीर होना बहुत कठिन है जिसमें फिकर की हो न बू।
और कुदरत भी न हो तो ऐसी फकीरी पर है थू॥

रहम नहीं दि माहे तो दुनिया छोड़ होना फकीर तू ।
याद इलाही जो कोई करे तो तू उसके चरणों को छू ॥

यह फकीर या साधु का लक्षण है । शब्द दोनों बहुत छोटे है किन्तु इनमे गंभीर अर्थ छिपा हुआ है । फकीर शब्द उर्दू के चार अक्षरो से बना है । उन चारो का अलग २ अर्थ ऊपर की कविता मे बताया गया है । संस्कृत भाषा मे इस प्रकार अक्षरों के अर्थ बताने को पद भंजन निरुक्ति कहा जाता है ।

फकीर शब्द में पहला अक्षर फे है । फे का अर्थ है, कि फकीर ! तेरे मे फिक्र न होना चाहिये । जो फिक्र या चिन्ता करता है वह क्या फकीर है !

फिकर सभी को खात है फिकर सभी का पीर ।
फिकर का जो फाका करे ताको नाम फकीर ॥

चिन्ता और चिता दोनों समान गुणवाली हैं । चिता मरे हुए को जलाती है और चिन्ता जिन्दे मनुष्य को । बस यही दोनो मे अंतर है । बाकी मनुष्य को जलाने का काम दोनों समान रूप से करती है । चिन्ता मे घुल घुल कर मनुष्य सूखकर कांटा बन जाता है । यह चिन्ता सब को खा जाती है । किन्तु साधु या फकीर ऐसे उस्ताद है जो चिन्ता को भी खा जाते है । उनके निकट चिन्ता फटकने नहीं पाती ।

फकीर शब्द मे दूसरा हरुफ काफ है । काफ का अर्थ कुदरत होता है । कीड़ो मकोड़ो मे भी कुदरत का नियम देखा जाता है तो क्या मनुष्य में वह नियम नही है ? मनुष्य मे कुदरत (प्रकृति)

है तथा कुदरत मनुष्य का साथ भी देती है। मगर जो लोग कुदरत पर विश्वास नहीं रखते या कुदरत के कानूनों का उल्लंघन करते है वे दुःख पाते है और हाय हाय करते है। रामचन्द्र जब वनवास के लिए गये थे तब अपने साथ क्या २ सामग्री ले गये थे? फिर भी क्या वे भूखो मरे थे? साधु लोग जब घर छोड़ते है तब अपने साथ क्या लेकर निकलते है? कुछ नहीं। कुदरत पर उनको भरोसा रहता है। अतः दुःखी नहीं होते। आजकल लोग कुदरत से लड़ाई करते है। यदि कुदरत के नियमानुसार मनुष्य रहने लगे तो भ्रष्ट चीजो के खाने की नौबत न आये। फकीर कुदरत के भरोसे रहता है।

तीसरा अक्षर फकीर मे र है। र का अर्थ रहम या दया है। जिसमे दया नहीं वह साधु नहीं। जो अपने प्राणों की बलि देकर भी दूसरो को कष्ट नही होने देता किन्तु उन पर दया करता है वही फकीर है। जो यह समझता है कि दुःखी के दुःख को जितने अंशो मे मै दूर कर सकूं उतने अंशो मे परमात्मा के समीप हूं, वह फकीर है!

आप लोग फकीर का अर्थ सुनकर इस कान से उस कान की ओर ले जाकर निकाल मत देना किन्तु इस पर विचार करना और बने उतना आचरण करना। दया करने के लिए आपको अपने रहन सहन और खान पान मे परिवर्तन करना पड़ेगा। दया से आपको अनन्त और अविनाशी सुख मिलेगा।

फकीर शब्द का चौथा अक्षर या है। या का अर्थ है इलाही—ईश्वर की याद बनी रहना। ईश्वर का उपयोग सदा बना रहे। हर क्षण और हर घड़ी परमात्मा की याद बनी रहे।

जिस क्षण उसकी याद नही रहती उस क्षण बड़े अनर्थ होने की संभावना रहती है। उसकी स्मृति जितनी देर बनी रहती है उतनी देर मनुष्य ईश्वर ही है। अनुयोग द्वार सूत्र में कहा है कि जितनी देर जीव ईश्वर मे उपयुक्त रहता है, उसमे तन्मयता धारण करता है उतनी देर के लिए वह ईश्वर कहा जाता है। कई महात्मा लोग ईश्वर में इतने तन्मय हो जाते है कि यदि कोई उनके शरीर पर घाव करता है तब भी उनका ध्यान विचलित नही होता। ऐसे महात्मा ईश्वर ही है।

कहने का सारांश यह है कि साधु वह है जो ऊपर बताये गुण अपनाता है। साधु के पास शुभाशीर्वाद होता है और वह उसको मिलता है जो धर्मकार्य मे प्रवृत्त होता है। पापवृद्धि के लिए साधु आशीर्वाद नही दे सकते।

अब मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति का जीवन-चरित सुनाता हूँ जो गृहस्थावास मे रहता हुआ भी फकीर की तरह रहता था।

सुदर्श चरित्र—

सुदर्शन की एक बार कपिला द्वारा परीक्षा हो चुकी है। उसमे वह उत्तीर्ण हुआ है। अब दूसरी बार परीक्षा होती है।

कामदेव की करी प्रतिमा महोत्सव खूब मंडाया।
बाहर जावे अन्दर आवे सब जन को भरमाया॥ रे धन०॥
कार्तिकी पूर्णिमा कोमुदी उत्सव नृप पुर बाहर जावे।
दर्शनजी नृप ाज्ञा से पोषध व्रत को ठावे॥ रे धन०॥

दुष्ट लोग धर्म के विषय में सदा उल्टा सोचते हैं। वे धर्म को ढोंग मानते हैं। अभया रानी सुदर्शन की धर्म चर्या को ढोंग कहती है। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि सुदर्शन जो कुछ धर्म क्रियाएं कर रहा है वे सब ढोंग है—दिखावटी है। किन्तु वह परस्त्री गमन न करने का जो नियम पालता था वह क्या बुरा था जिसे तुड़वाने के लिए रानी कटिबद्ध बनी हुई है ? किन्तु यह दुष्टता का का लक्षण है। दुष्ट को दूसरा के गुण अच्छे नहीं लगते। वे अपने को अच्छा मानते है बाकी जगत् को ढोंगी और दुर्गुणी मानते हैं। जब स्वयं मे चंचलता होती है तो सारे जगत् मे चचंलता नजर आती है। पानी मे गिरा हुआ चंद्र बिम्ब, पानी के हिलने से चंचल दिखाई देता है। यदि पानी मे काला, पीला, नीला आदि रंग मिला हुआ हो तो चंद्र बिम्ब भी उसी रंग का मालूम देगा। इसी प्रकार जिसका मन जिस रंग मे रंगा हुआ होता है उसे सारा जगत् भी वैसा ही दिखाई देता है। वह अपने मन से सारे जगत् को मापता है। अपना हृदय कलुषित होता है तब दूसरों का हृदय भी कलुषित होगा ऐसी कल्पना करली जाती है। अपना दिल साफ है तो दूसरे भी भले मालूम होगे।

ज्ञानी लोग दूसरो मे बुराई नहीं देखते। 'अमुक मे वह' इस प्रकार कह कर वे किसी का अपमान नहीं करते। जिस प्रकार डाक्टर किसी रोगी को देखकर उसकी निन्दा या अपमान नहीं करता। बल्कि उसके रोग की जॉच करके रोग मिटाने का प्रयत्न करता है। उसी प्रकार ज्ञानी लोग भी दूसरे की बुराई देखकर ही नही रह जाते मगर उस बुराई की पहचान करके उसको जड़ मूल से उखाड़ फेकने की कोशिश करते है। दुर्जनों और सज्जनो मे यही अन्तर है।

रानी अभया को किसी भी भोग्य पदार्थ की कमी न थी। किन्तु उसमें एक शैतान प्रवेश किया हुआ था जिससे वह सुदर्शन को शील से भ्रष्ट करना चाहती थी। रानी का बोझा हल्का करने का भार पण्डिताने अपने ऊपर ले लिया है। वह जाल रचने मे और दूसरो को उसमें फंसाने में अपने को बड़ी होशियार मानती थी। अपनी चतुराई का उपयोग करके उसने सुदर्शन के आकार की कामदेव की एक मूर्ति बनाई। यह कामदेव की मूर्ति है। ऐसा सर्वत्र प्रसिद्ध कर दिया गया। रानी अपनी मनो कामना पूरी करने के लिए इस मूर्ति की पूजा करती है।

बुतपूजा को विकार कहा जाता है। लेकिन विकारी मनुष्य को सर्वत्र विकार ही विकार नजर आते हैं। यदि अपनी बुराई त्याग कर किसी से भी अच्छाई ग्रहण की जावे तो किसी प्रकार की बुराई नहीं है। मगर होता यह है कि मनुष्य दिखाव कुछ और करते हैं और काम कुछ और।

पण्डिता शाम के वक्त अन्य दासियों को साथ लेकर उस मूर्ति को महल से बाहर निकालती और गाजे बाजे के साथ उसे शहर में घुमाती। रात पड़ने पर वापस उसे महल में ले आती। ऐसा उसने कई दिनो तक किया। पहरेदार तथा अन्य लोग यह समझते थे कि कोई उत्सव चल रहा है जिससे प्रतिदिन दासियां महल से बाहर आती है और मूर्ति को घुमा ले जाती हैं। इस प्रकार वे भ्रम में थे। पण्डिता ने उस कामदेव की मूर्ति को ठीक वैसे ही वस्त्र पहनाये थे जैसे सुदर्शन पहना करते हैं। कभी २ वह मूर्ति को धर्मकार्य के वक्त पहनने लायक वेष भी पहनाती थी। यदि कोई कुछ पूछता तो कह देती कि धर्म कार्य के मामले मे तुम

क्या समझो। लोग चुप हो जाते । आजकल भी धर्म के नाम से लोग बहुत ठगे जाते है। पण्डिता ने भी धर्म के नाम से ठगाई शुरु की है।

पण्डिता विचार करने लगी कि यहां तक तो कार्य ठीक चल निकला। किन्तु अब सेठ सुदर्शन को कैसे लाना ? वह इस चिन्ता में थी कि कार्तिकी पूर्णिमा का महोत्सव निकट आ गया। राजा ने नगर के सब मनुष्यों को आज्ञा दी कि सब लोग मेरे साथ बाहर चलें। यह हुक्म सुनकर सुदर्शन विचार करने लगा कि राजा के लिए यह दिन आमोद प्रमोद करके उत्सव मनाने का है। किन्तु कार्तिकी पूर्णिमा होने से मेरे लिए विशेष धर्माराधन का दिन है। मुझे पौषध करना है।

पौषध का अर्थ है-धर्म का पोषण करना, आत्मिक गुणो की वृद्धि करना। श्रावक के चार विश्राम स्थल कहे गये है, उनमे पौषध भी एक है। कई लोग कहते है कि पौषध करना अच्छा है। किन्तु भूखो मरना किस काम का ? ऐसा कहने वाले भूल करते है। उपवास शरीर और आत्मा दोनो के लिए लाभप्रद है। इञ्जिन को कोयला पानी दिया जाता है और कभी २ उसे विश्राम भी दिया जाता है। विश्राम दिये बिना इञ्जिन के भीतर की खराबी ठीक नहीं हो सकती। वैसे ही पेट रूपी इञ्जिन से नित्य भोजन पान करने से खराबी उत्पन्न हो जाती है। कभी २ उपवास कर लेने से इस मशीन को आराम मिल जाता है। तथा भीतरी खराबी साफ हो जाती है। जठराग्नि पेट के अंदर रहे हुए कूडे कचरे को भस्म कर देती है। यह विज्ञानसिद्ध सत्य है। फिर भी रस लोलुपी और जबान के चटोरे लोग उपरा ऊपरी खाये जाते है। भूख न होने

पर भी स्वाद के कारण वस्तुएं पेट में भरे जाते हैं। ऐसा करने से कितनी बुराइयां और बीमारियां पैदा होती है इसका उनको ज्ञान नहीं है। उपवास करने से आंतो को विश्राम मिल जाता है जिस से उनमें नई शक्ति पैदा हो जाती है और वे अधिक तेजी से काम देने लगती है।

इस बात की परीक्षा करनी हो कि उपवास करने से शरीर घटता है या बढ़ता है तो उपवास के पहले दिन नियमित भोजन कर के शरीर का वजन कर लिया जाय। फिर उपवास किया जाय। तथा उपवास के बाद पारणा करके दूसरे दिन वापस शरीर को तोला जाय। तब पता लग जायगा कि वस्तुतः वजन बढ़ता है या घटता है। यदि शरीर का वजन घटने के बजाय बढ़ जाय तब तो मानना चाहिये कि शरीर के लिए उपवास आवश्यक है। उपवास न करना शरीर पर अत्याचार है। आजकल वैद्य डाक्टरो और रोगो की बहुलता देखी जाती है वह उपवास न करने के कारण है। शरीर स्वस्थ रहने से आत्मा भी हल्का और प्रसन्न रहता है।

राजा की आज्ञा सुनकर सुदर्शन विचार में पड़ गया कि क्या करना चाहिये। उसने निर्णय कर लिया कि राजा के पास जाकर इजाजत ले आना चाहिये। वह राजा के पास जाकर कहने लगा कि महाराजा! आपकी आज्ञा उत्सव में शामिल होने की है। मगर कार्तिकी पूर्णिमा होने से मैं पौपधोपवास व्रत करना चाहता हूँ। इसके लिए आपकी इजाजत चाहता हूँ।

उस समय के राजा लोग धर्मप्रिय और न्यायनिष्ठ होते थे। सुदर्शन का कथन सुनकर राजा कहने लगा कि सेठ! तुम

धन्य हो। लोग आमोद प्रमोद के अवसर की ताक में रहते हैं और तुम धर्माराधन के अवसर को खोजते हो। जो लोग धर्म में लगे रहते है उनको मैं धन्यवाद देता हूं। तुम आनन्दपूर्वक धर्म-सेवा करो। मेरी आज्ञा है।

राजा की आज्ञा पाकर सुदर्शन पौषध-शाला मे आया। उसने अपने हाथ से पौषधशाला की सफाई को। क्या आप लोग अपने हाथो से कभी पौषधशाला की सफाई करते हो? आप लोग नौकर रख देते हो। वह पौषधशाला मे बुहारी निकाला करे। मगर निज हाथो से यतना का यह काम नहीं करते हो। नौकर यतनापूर्वक पौषधशाला पूंजता है या अयतना से यह आप नहीं जानते। जो लोग अपने हाथो से काम करते है वे उस कार्य मे बड़ी यतना और सावधानी रख सकते हैं। नौकरों के काम में वह सावधानी और विवेक कहां हो सकता है? नौकर तो सुदर्शन के भी रहे होंगे। किन्तु धर्मस्थानक मे अभिमान का पोषण करना उन्हे उचित न जॅचा होगा। अतः निज हाथो से पौषध-शाला को पूंजा। पौषधशाला मे यदि गंदगी पड़ी रहे तो व्रत मे दूषण लगता है।

पौषधशाला को साफ करके उसमें घास का संथारा (विस्तर) किया। क्या सेठ सुदर्शन के यहां कीमती शय्याएं न थीं जो घास का विस्तर बिछाया? किन्तु बात यह है कि घास में बड़ा गुण है। कच्चे आम के फल यदि घास में रक्खे जाय तो वे चार छह दिन मे पक जाते हैं। किन्तु उन्हीं कच्चे आमो को यदि मखमल के गद्दो मे चार छह दिन रखा जाय तो वे सड़ जायंगे। अन्य भी घास मे कई गुण है। घास का बिछौना नम्रता और

सादगी का भी प्रतीक है। साधारण लोग गुण न देख कर शोभा देखते हैं। छोटी वस्तु पर ध्यान न देकर बड़ी वस्तु खोजते हैं। बड़ी और कीमतन वस्तुओं से अमीर लोगों का काम चल चकता है। किन्तु करोड़ों की संख्या में विद्यमान गरीब लोगों का काम घास जैसी तुच्छ वस्तु से चलता है। यदि घास न हो तो पशुओं की क्या दशा हो ? घास न हो तो अन्न भी नहीं हो सकता।

सुदर्शन घास के संथारे पर बैठकर धर्माराधन करने लगा। पण्डिता ने सोचा कि सुदर्शन को महल मे लाने का आज सुवर्ण अवसर है। किस प्रकार पण्डिता सुदर्शन को लाती है और किस प्रकार सुदर्शन इस परीक्षा मे से गुजरता है, आदि बातो का विवेचन आगे देखा जायगा।

—राजकोट,
ता० २-६-३६



नीतिमय जीवन आध्यात्मिक जीवन की नींव है



धर्म जिनेश्वर ! मुझ हिवड़े बसो, प्यारा प्राण समान ।

प्रार्थना—

यह भगवान् धर्मनाथ की प्रार्थना है। इस में प्रार्थना करने की रीति बताई गई है। जिस भक्त को जैसा अनुभव होता है वह उसी तरीके से संसार के समक्ष अपने अनुभव रख सकता है। हर व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अपने तरीके से दुनिया के समक्ष आए। वैसे ईश्वरीय रूप पूर्णतया शब्दों से प्रकट नहीं किया जा सकता। कारण कि शब्द अपूर्ण है और वह पूर्ण। किन्तु आत्मा का ध्येय उस पूर्ण तत्त्व तक पहुंचना है। अतः अपूर्णता के द्वारा पूर्णता तक पहुंचने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रार्थना मे इसी बात का संकेत है कि अपूर्णता के सहारे पूर्णता तक कैसे पहुंचा जाता है। भक्त ने प्रार्थना करते हुए कहा है कि हे धर्म जिनेश्वर ! मेरे हृदय में आकर बस जा।

भक्तो की अभिलाषा कितनी बड़ी है ! कोई दरिद्री व्यक्ति यह अभिलाषा करे कि बादशाह आकर मेरे टूटे फूटे झोंपड़े में आकर बस जाय तो लोग उसकी मजाक किये बिना न रहेगे। क्या भगवान् बादशाह से कम है ? नहीं, अनेक बादशाहो की बादशाहत उनके सामने तुच्छ है। और क्या भक्त का हृदय दरिद्री के टूटे झोपड़े से बढ़कर है ? जो वह भगवान् को उसमें आकर बस जाने की कामना और प्रार्थना करता है। भक्तो की कामना बहुत उच्च है। जब कोइ सयाना आदमी किसी प्रतिष्ठित मेहमान को अपने यहां निमंत्रित करता है तो वह अपने घर का याल करता है कि अतिथि के योग्य व्यवस्था मेरे यहां पर है या नहीं। मेहमान के योग्य मेरे घर मे सफाई और सुव्यवस्था है या नहीं। इसी प्रकार परमात्मा को अपने क्षुद्र हृदय में बसाने की कामना करने वाले भक्त भूल तो नहीं कर रहे है ? नहीं, परमात्मा को अपने दिलमें बसाने की भावना वाला मनुष्य कुछ भी भूल नहीं करता। वह दीन-दयालु है। उसके लिए भौतिक सामग्रियां अपेक्षित नही होती। केवल हृदय की शुद्धि अपेक्षित है। चाहे कोई अमीर हो चाहे गरीब जिसका दिल पाक है उसको परमात्मा को निमंत्रण देने का अधिकार है। और परमात्मा भी दिल का देखकर निमंत्रण स्वीकार कर लेता है। पिता कितना भी बड़ा आदमी क्यो न हो उसका बालक उसका हाथ पकड़ कर अपने घर मे खींच लाने मे कतई नही झिझकता। और न पिता पुत्र के घर को क्षुद्र समझकर उसमे जाने से परहेज करता है। सच्चा प्रेम होना आवश्यक है। इसके बिना न पिता आता है और न परमेश्वर। विलायत मे पिता के आगमन पर भी अपने घर मे न ठहरा कर होटल बता दिया जाता है। किन्तु अभी तक भारत का

सद्भाग्य है कि उसमें ऐसा रिवाज दाखिल नहीं हुआ है। यहां कौटुम्बिक जीवन में प्रेम व भक्ति संमिश्रित है।

पुत्र के समान भक्त भी भगवान् पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार मान कर अपनी योग्यता अयोग्यता का खयाल न कर उनको हृदय में बस जाने की प्रार्थना करता है। कहता है कि मुझे मेरे प्राण जितने प्रिय हैं उतने आप भी प्रिय हैं। प्राणों के बिना मै जिन्दा नहीं रह सकता और आपके बिना भी।

इस विषय में थोड़ा विचार करना है कि क्या परमात्मा हमसे अलग है जो उसको आने के लिए आह्वान किया जाना जाता है। सब शास्त्र तो यह बात बताते है कि आत्मा को पहचानने से परमात्मा सन्निकट मालूम देता है। कुरान शरीफ में भी कहा है कि अल्ला मियां श्वासोच्छ्वास से भी समीप है। जब कि परमात्मा पास ही है तब भक्तों ने पास बुलाने का आमंत्रण क्यों दिया ?

यह एक प्रश्न है। इसका समाधान यह है कि यद्यपि परमात्मा निकट से भी निकटतर है। परन्तु आत्मा की थोड़ी भूल हो रही है। वह उसको दूर मान रही है। निकट को दूर मानने की आत्मा भूल कर रही है। तथा विषय-कषायो का रंग चढ़ा हुआ होने से आत्मा अपना भान भूला हुआ है। इस बात का विवेक करने के लिए भक्त भगवान् को निमंत्रण देते हैं। तुम प्रभु! निकटतम हो फिरभी बीच में बड़ी खाइयाँ है। उनको तुम्हारे सहारे के बिना पार करना कठिन है।

काम क्रोध मद मत्सर लोभ थी कपटी कुटिल कठोर।
इत्यादिक अवगुण करी हूं भयों उदय कर्म के जोर॥

हे प्रभो! मुझे कभी काम सताता है और कभी क्रोध। कभी लोभ और मोह सताते हैं। ये मेरा सर्वस्व हरण कर लेते हैं। मेरा सारा सार खींच लेते हैं। जैसे सामने परोसी हुई थाल को कुत्ते खींच ले जाते है वैसे मेरे सद्गुणों और शक्तियों को ये काम क्रोधादि खीच ले जाते है। इस बात की शिकायत तेरे सिवा किसके सामने करूं? तू ही मेरा एक मात्र आधार है।

तेज प्रताप तुम्हारो प्रकटे मुझ हिरदा में आय।
तो हूं आतम निज गुण सँभाल ने अनन्त बली कहाऊँ॥

भगवन्! तेरे प्रकाश की एक किरण भी प्राप्त हो जाय तो मेरे ये सारे शत्रु दुम दबा कर भाग जाय। मेरे पराक्रम से इन शत्रुओं का भागना असम्भव मालूम देता है। अतः तेरी शरण में आया हूँ। तू मेरे हृदय में बस जा। फिर ये काम क्रोधादि एक क्षण भर के लिए भी नहीं ठहरेंगे। राजा स्वयं घर मे आकर बस जाय फिर चोरो का क्या डर है?

इस प्रार्थना में भक्त ने जो कामना की है वह उसके अकेले के लिए नही है किन्तु सब के लिए है। प्रार्थना पर सब का समान अधिकार है। समान अधिकार होते हुए भी जो उसका उपयोग करता है उसको लाभ होता है। सूर्य बिना भेद भाव के सब को समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है किन्तु यदि कोई व्यक्ति

अपनी आंखे बन्द कर ले तो इसमें सूर्य का क्या दोष है ? पानी पर सब का अधिकार है। जो कि आजकल लोग पानी पर भी अधिकार करने लग गये है। पानी पीने से प्यास बुझ जाती है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति पानी पीने की विधि से पानी न पीकर कान से पानी पीने लगे तो क्या उस की प्यास शान्त होगी ? कदापि नही। कुदरत की सारी वस्तुओं पर सब मनुष्यों का समान अधिकार है। मगर उन का उपयोग नियम पूर्वक हो तब वे लाभ-दायी होती हैं। इसी प्रकार प्रार्थना करने का सब को समानाधिकार है। किन्तु प्रार्थना की विधि मालूम होनी चाहिये। पर-मात्मा भी सब का है किन्तु उसे अपने पास बुलाने का तरीका मालूम होना चाहिये। यह नहीं हो सकता कि परमात्मा को निमंत्रण दे दो और हृदय को अशुद्ध बनाये रक्खो। माया और राम का परस्पर विरोध है। एक तरफ काम क्रोधादि को निमंत्रण दे आये और दूसरी तरफ परमात्मा को। जब दोनो आये तो एक दूसरे को देखकर चेक गये। जो भला आदमी होता है वह ऐसे झंझट के कार्य मे खड़ा नही रहता वह पहले दूर चला जाता है। काम क्रोधादि को दूर से देखकर परमात्मा दूर हट जाता है।

तब यह प्रश्न खड़ा होता है कि जो गृहस्थ व्यक्ति है उनके लिए परमात्मा को हृदय मे बसाना असंभव कार्य हो जायगा। कारण कि कुटुम्ब को लेकर बैठे है। उनका भरण पोषण आदि करना पड़ता है जिसमे अल्प आरंभ समारंभ और लोभ मोह आदि होते ही है। यह ठीक है कि आप घरबारी है। किन्तु यदि आप घर द्वार नहीं छोड़ सकते तो कम से कम उन पर जो आपका अहंकार है वह तो छोड़ दीजिये। घर-बार मे रहते हुए निरभि-

मानी बन कर परमात्मा का ध्यान रक्खो। कोई भी काम या क्रिया मात्र बंधन कर्त्ता नहीं है किन्तु उसके पीछे जो भली बुरी भावना होती है वह बंधन का कारण है। गृहस्थावास में रह कर अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करना कि उसमें किसी को कष्ट न हो। सदा मन में ईश्वर का ध्यान रखते हुए जो अपना गृहस्थी का कार्य करता है वह संसार में निर्लिप्त रह सकता है । निर्लिप्त रह कर दुनियादारी का काम चलाना सरल काम नहीं है। किन्तु जिसे परमात्मा से भी भेंट करनी है और संसार व्यवहार भी साधना है उस के लिए एक मात्र यही मार्ग है जो इस प्रार्थना में भक्त ने बताया है:—

ज्यों पनिहारी कुम्भ न विसरे, नटवो नृत्तविहार ।
पलक न विसरे पदमणि पिऊ भणी चकवी विसरे न भान ॥

जैसे होशियार पनिहारी सिर पर मटका रख कर चलती है। मार्ग में उसे उसकी सखियां मिल जाती हैं। उन को देख कर वह बड़ी प्रसन्न होती है । उन से बातचीत किये बिना उससे रहा नहीं जाता। मस्तक पर पानी से भरा हुआ घड़ा रखा हुआ है। फिर भी बाते करने का मन है। संसार में किसी से बोले बिना रहा नहीं जाता और न निर्वाह ही होता है। अतः बोलना पड़ता है। उस पनिहारी को अपनी सखियो से वार्तालाप भी करना है और मस्तक पर रखे घड़े का भी ध्यान रखना है। वह चलती जाती है। सखियों से वार्तालाप भी करती जाती है। और मस्तक पर धरे घड़े का भी पूरा ध्यान रखती है। कहीं वह गिर न पड़े। लक्ष्य भी साधना और व्यवहार भी रखना। पनिहारी में दोनों

बाते पाई जाती हैं। इस कला मे पनिहारी-पानी लाने वाली बाई बड़ी चतुर है।

मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि एक बार एक बाई ने अपने पैर मे लगा हुआ कांटा निकाल लिया। कांटा निकाल लेना साधारण बात है। किन्तु विशेष परिस्थिति मे इतना छोटा काम भी महत्त्व पूर्ण बन जाता है। उस बाई के सिर पर ऊपरा ऊपरी दो घड़े रखे हुए थे। एक छोटा मटका उसकी बगल मे था। इतने मे चलते चलते पैर मे कांटा लग गया। वह ठहर गई और बड़ी चतुराई से पैर को ऊंचा उठाकर एक हाथ से कांटा खींच लिया। उस वक्त उसको अपने घड़े का कितना ध्यान था यह भुक्त भोगी व्यक्ति ही जान सकता है। उसने तीनो घड़ो मे से किसी को न गिरने दिया।

इसी प्रकार कई स्त्रियां सिर पर मटका रक्खे हुए बातें करती जाती है। किन्तु उनका ध्यान मटके मे होता है। कोई दर्शक यह कह सकता है कि यह पनिहारी है या बतोकड़ी (बातूनी) स्त्री है। पर यदि बाते करते हुए भी वह अपने सिर पर के घड़े को नहीं गिरने देती है तो लोग कुछ भी कहते रहे, वह कुशल पनिहारी मानी जाती है। और उसके काममे किसी प्रकार का हर्ज नहीं होता। यदि बातो मे लगकर वह घड़े को भूल जाय और असावधानी से उसे गिरा दे तथा फोड़ डाले तो वह कुशल पनिहारी नही कही जा सकती। लोगो का अधिकार है कि वे ऐसों की टीका टिप्पणी किया करते है।

पनिहारी के दृष्टान्त से आप लोग आगे का विचार समझ लो। दो पैसे के घड़े लिए यदि पनिहारी सावधानी न रक्खे तो

वह फूहड़ स्त्री गिनी जाती है। लोग उसकी निन्दा करते हैं कि यह कैसी बातूनी स्त्री है जो बातों बातों में अपना घड़ा फोड़ बैठी है।

अब आप लोग ईश्वर का विचार करो। ईश्वर की महत्ता पनिहारी के घड़े के बराबर भी आंकते हो या नहीं? आप लोग घर बार को संभालते हो किन्तु ईश्वर को भी संभालते हो या नहीं? कहने को तो सभी यह कहते हैं कि हम ईश्वर को याद करते है। सदा उसका ध्यान रखते है। किन्तु उसका पता कैसे लगे कि आप उसे संभालते हो या नहीं। घड़ा या दुनियादारी के काम प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं किन्तु हृदय मे निवास करने वाला प्रभु प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता। आपके हृदय की बात कौन जान सकता है कि आप ईश्वर को भूले हुए हैं या याद किए हुए है। अतः अपना अपना हृदय स्वयं ही तपासना चाहिये।

घर धन्धे के काम मे लग कर सिर पर रखा हुआ ईश्वर रूपी घट किस प्रकार फूट सकता है और किस प्रकार उसका रक्षण किया जा सकता है यह बात बड़ी गहरी और लम्बी है। संक्षेप में इतना कहता हूँ कि आप अपने नैतिक जीवन की रक्षा भी करते हैं या नहीं? आपका अपने माता, पिता, भाई बन्धु, स्त्री पुत्रादि के साथ जो नैतिक सम्बन्ध है उसका पालन करते हो या नहीं?

आप कह सकते हैं कि हम मा बाप को मा बाप मानते हैं। किन्तु मानने के साथ २ आपकी उनके प्रति कोई जिम्मेदारी भी है या नहीं? उस जिम्मेवरी को आप निभाते है या नहीं?

माता पिता का पुत्र की रग रग पर आधिपत्य है। चाहे शास्त्रीय दृष्टि से देखें चाहे वैज्ञानिक दृष्टि से इस शरीर पर माता पिता का अधिकार है। अतः माता पिता यदि शरीर की मांग करें तो भी पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह उसको अपना शरीर सौंप दे। वैसे पिता अपनी संतान का किंचित् भी कष्ट नहीं देख सकते और न कष्ट देते हैं किन्तु उनका यह अधिकार अवश्य है। क्या आप लोग पिता का यह अधिकार स्वीकार करते हो कि वे शरीर भी मांग सकते है? यह अधिकार स्वीकार करना ही सच्ची कर्त्तव्य निष्ठा है।

इसी प्रकार जिस कुटुम्बी के साथ जैसा सम्बन्ध है उसका खयाल करके नैतिक जीवन की परिपुष्टि करते हैं या नहीं इस बात पर ध्यान दीजिये। यदि नैतिक जीवन की भी रक्षा नहीं की जा सकती तो आध्यात्मिक जीवन की बाते करना व्यर्थ है। जो व्यक्ति नैतिक जीवन के प्रत्यक्ष सम्बन्ध का यथावत् निर्वाह और पालन नहीं कर सकता अथवा उस सम्बन्ध को स्वीकार भी नहीं करता वह अनुमान और आगम प्रमाण से कही गई आध्यात्मिक जीवन की बात को क्या समझेगा और मानेगा। आध्यात्मिक जीवन के लिए नैतिक जीवन होना आवश्यक है। जो नैतिक जीवन की रक्षा करता है उसके लिए कहा जा सकता है कि वह मार्ग पर है।

घर-बार मे रहते हुए भी यदि मनुष्य नीतिमय जीवन बिताता है तो वह ईश्वर स्मरणरूपी घड़े की भी रक्षा करता है और व्यवहार भी चलाता है। संसार में रह कर संसार के कामो मे अनासक्त रहना—गृद्धि भाव न आने देना जीवन की एक

विशिष्ट कला है। प्रार्थना में बताये हुए चारों दृष्टांतों पर शांति से विचार करना चाहिये।

नट रस्सी पर चलता है और लोगों को प्रसन्न करता है। किन्तु इस का ध्यान अपने आप को बचाने की तरफ रहता है। सती स्त्री पति के वियोग में सब प्रकार के काम करती हुई भी उसका सदा ध्यान रखती है। चकवी भी सूर्य को नहीं भूलती। इसी प्रकार कुटुम्ब मे रह कर व्यापार धन्धा और गृहस्थी का संचालन करते हुए भी जो पुरुष परमेश्वर को नही भूलता हर क्षण उसका ध्यान रखता है वह जीवन की कला समझता है। उसका जीवन आदर्श जीवन है। ऐसे व्यक्ति को पूर्ण त्याग मार्ग स्वीकार करने में कठिनाई नहीं होती। उसका मन पहले ही तय्यार रहता है। वह जो कुछ करता है जलकमलवत् रह कर करता है। ऐसे ही एक महापुरुष का जीवन चरित्र मैं आपको कई दिनो से सुना रहा हूँ।

शा —

अनाथी मुनि गृहस्थावास मे रहकर अपने नैतिक जीवन की जिम्मेवरियां से दूर नहीं भागे थे। उनको विशेष आध्यात्मिक मार्ग पर आरूढ़ होना था अतः उस जीवन से अधिक उच्चतर जीवन की ओर प्रयाण किया था।

अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक को यह बात बताई कि मेरे माता पिता आदि मेरे बड़े हितचितक थे। वे मेरे लिए सदा यत्न शील थे। सुख के साथी बहुत होते हैं किन्तु दुः के साथी कम। मेरे माता पिता पत्नी आदि दुः में भी साथ न छोड़ने वाले थे।

यदि अनाथी मुनि का अपने कुटुम्बियों के प्रति नैतिकता पूर्ण व्यवहार न होता तो क्या मा बाप और भाई आदि उनके लिए इतना कष्ट भोगने और आर्थिक हानि सहन करने के लिए तैयार होते ? कदापि नहीं। अनाथी मुनि ने रुग्णावस्था से पूर्व अपने सम्बन्धियों की बड़ी लगन से सेवा की थी और उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों को अच्छी तरह निभाया था अतः कुटुम्बी जन भी उनके लिए हर प्रकार का भोग देने के लिए तय्यार थे। अगर पहले उन्होंने अपना कर्त्तव्य न निभाया होता तो माता पिता कहते कि हम क्या करें अपना किया कर्म भोगो। तुमने हमारा कहना कहां माना था ? तुम बड़े स्वेच्छाचारी थे। अब अपने हाथ का किया कर्म भोगो। भाई के प्रति कर्तव्य न निभाया होता तो भाई भी दुःख के समय पूर्व की बाते याद कराकर और दुःखी करते। इसी प्रकार खुद का चरित्र निर्मल न रखा होता तो स्त्री भी कहती कि मुझे क्या सुख दिया जो मै सेवा करूं, वह सच्चा प्रेम न दिखलाती।

अनाथी मुनि कहते है कि मैंने गृहस्थ अवस्था मे सब के साथ यथायोग्य सम्बन्ध निभाया था अतः सब लोग मेरे दुःखमें दुःखी थे और दुःख मिटाने के लिए बड़े आतुर थे। इतना होने पर भी मेरा रोग न मिटा। जिससे मै इस परिणाम पर पहुंचा कि अध्यात्मिक जीवन के बिना नैतिक जीवन भी अपूर्ण है। जिस प्रकार नैतिक जीवन के विना आध्यात्मिक जीवन अपूर्ण है उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन के विना नैतिक जीवन भी अपूर्ण है। दोनो एक दूसरे के पूरक है।

कई लोग कहते है कि आध्यात्मिक बात हमारी समझ में

नहीं आती। उनका कहना ठीक है नैतिक जीवन के अभाव में आध्यात्मिक बात कैसे आ सकती है? जिस मनुष्य के सिर पर कर्ज हो वह दुकान लगाकर शांतिपूर्वक व्यापार कैसे कर सकता है? यदि वह दुकान पर बैठता है तो कर्जदार लोग आकर खड़े हो जाते है और उसे तंग करते हैं। किन्तु यदि वही मनुष्य कर्जदारों से पिण्ड छुड़ाने के लिए सामायिक या पौषध ले कर बैठ जाय तो क्या वह सचमुच आध्यात्मिक बन जाता है? क्या उसके सामायिक पौषधादि आध्यात्मिकता में शामिल गिने जायंगे। जो नैतिक जिम्मेवारी नहीं निभाता वह आध्यात्मिकता को क्या निभायेगा? यह तो कर्जदारी के कष्ट से निवृत्ति प्राप्त करने का एक तरीका हुआ। मगर अध्यात्ममार्ग में तो इन कष्टो से भी अधिक कष्ट आते हैं। जो छोटे कष्टों से डर कर जीव छिपाया करता है वह बड़े कष्टों को कैसे सहन कर सकता है? अतः नैतिक जीवन अच्छी तरह बिताने की जिसकी तय्यारी नहीं है वह आध्यात्मिकता के मार्ग मे गमन करने लायक नहीं है। शास्त्रकारों ने भी नैतिक जीवन की उपेक्षा करके आध्यात्मिक जीवन की बात नहीं बताई। जब नैतिक जीवन शुद्ध हो, सिर पर कर्ज न हो तब पूर्ण आध्यात्मिक जीवन बिताया जा सकता है। और तभी अध्यात्म की बात समझ में आती है।

पनिहारी के घड़े परसे यह बात समझ लो। जैसे पनिहारी के सिर पर पानी का घड़ा है। वैसे ही मनुष्य के सिर पर आध्यात्मिक जीवन का घड़ा है। पनिहारी अपनी सखियो से बाते करके व्यवहार साधती है और घड़े का भी ध्यान रखती है। उसी प्रकार नैतिक जीवन की बातें हैं। जो कुशल गृहस्थ है वह घड़े की संभाल की तरह अपने आध्यात्मिक जीवन का पूरा ध्यान

रखता है और साथ में अपने कुटुम्बीजनों, ग्रामवासियों और देशवासियों के प्रति अपने कर्त्तव्यो को भी निभाता है। जो कोरी आध्यात्मिक बातें करता रहे या कुछ क्रियाकाण्ड भी करता रहे और नैतिक फर्ज अदा न करे तो उसकी लोग निन्दा करेंगे। कहेंगे कि श्रावक या साधु होकर इसने ऐसा व्यवहार किया। इसलिए मित्रो ! पहले नैतिक जीवन की तरफ देखो ! उसे सुधारने का प्रयत्न करो फिर आध्यात्मिक जीवन की तरफ लक्ष्य करो कि मै कौन हूं, कहां से आया हूँ, मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है आदि। मै की पहचान के लिए एक कवि ने कहा है:—

मैं जिस्म जिगर और जहां नहीं, जाना ना।
फिर क्यों नहीं कहता खुदा अगर है दाना।
किसने तुझ को बांदा बना जो बन्दा।
कौन पेच का पड़ा है तुझ पर फन्दा।
तू अपने आप को देख न हो मतिमन्दा।
है कौनसी वह बदबू जो हुआ तू गन्दा।
गर तू ने अपने को जिस्म नहीं जाना ना ॥ फिर ॥
ये हाथ पांव और सिर भी नहीं कुछ तू है।
सीना और बाजू पर भी नहीं कुछ तू है।
जनखा और नर भी नहीं कुछ तू है।
जिन, देव, परी, पैकर नहीं कुछ तू है।
तू अपने बीच में आप ही आप समाना ॥ फिर ॥

किसी ज्ञानी ने किसी मनुष्य से पूछा कि तू कौन है? उसने उत्तर दिया कि अमुक मेरा नाम है, अमुक का पुत्र हूँ। आदि। पूछने वाले ने कहा कि ये बातें मैं नही पूछता। मै तो पूछता हूँ कि तू कौन है? क्या तू आँख नाक कान शरीर आदि है? कहने को तो वह यह कह देता है कि मैं जिस्म-शरीर नहीं हूँ। किन्तु परीक्षा करने पर वह खरा नहीं उतरता। कई लोग लोक लज्जा के भय से भी अपने को देह नहीं बताते। नास्तिक कहे जाने के डर से लोग ऊपर से आध्यात्मिक उत्तर दे देते हैं कि हम आत्मा हैं जो अजर अमर अविनाशी है। मगर दिल में उनको आत्मा की अमरता पर विश्वास नहीं होता।

वस्तुतः हाथ पाँव शरीरादि "मैं" नहीं हूँ। इन सब को जो जानने वाला है वही मैं हूँ। जीव! तू इस बात पर विचार कर कि जब तू माता के पेट में था तब कैसा था? जब जन्मा तब कैसा था और अब कैसा है? गर्भावस्था से लेकर अब तक की सारी अवस्थाओं पर विचार कर। अन्न, जल, दूध, शाक, हवा आदि से यह शरीर बना हुआ है।

भू जल अग्नि पवन नभ मेल।
पांचों भये चेतना खेल॥

पृथ्वी, पानी, अग्नि, पवन और आकाश इन पञ्चभूतों के संयोग से यह शरीर बना हुआ है। चेतना इसमें निवास करने वाला कुछ और ही है। विविध अवस्थाओं में घूमने वाला आत्मा शरीर से भिन्न है। गर्भावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था ये सब बाते शरीर पर लागू होती हैं। आत्मा

की अवस्था सदा एक प्रकार की रहती है। वह जवान और बूढ़ी नहीं होती।

मैंने वजीर वीरजी भाई की दी हुई पुस्तक का कुछ अंश पढ़ा है। जितना अंश पढ़ लिया है उसमे लिखा है कि 'मालिक ने हुक्म दिया है कि तू तेरी किताब बांच। तेरे को सब हाल मालूम हो जावेंगे।'

दुनिया में अनेक पुस्तक और ग्रंथ हैं। आजकल यंत्रयुग है। छापखाने का प्रचार बढ़ जाने से पुस्तकों की कमी नहीं रही है। किन्तु इस पुस्तक मे लिखे वाक्य का भावार्थ यह है कि ऐ मनुष्य ! तू अपने शरीर रूपी किताब को पढ़ ! इस किताब को बारीकी से देख कि इसके भीतर क्या २ है। इस शरीर का संचालक कौन है, इस पर विचार कर।

आप लोग घड़ी को चलती हुई देख रहे हो। किन्तु यदि इसमे कमानी न हो तो क्या यह चल सकती है ? इसी प्रकार यह शरीर रूपी घड़ी भी आत्मा रूपी कमानी के बिना नहीं चल सकती। आत्मा रूप कमानी अलग है और शरीर रूप घड़ी अलग। आप उसको आंखो से देखना और शरीर से स्पर्श करना चाहते हो किन्तु वह देखने व छूने योग्य नहीं है। वह न देखा जा सकता है और न छुआ जा सकता। फिर भी वह है अवश्य। एक उदाहरण रख कर यह बात आपको समझाता हूँ। जरा ध्यान देना।

एक स्त्री अपने पति से कहती है कि आप सदा आत्मा की बात किया करते हो किन्तु आत्मा कहां है यह मुझे भी

बताओ। पति ने कहा–अच्छा बताता हूँ। थोड़ा नमक का डला ले आ। पत्नी नमक का एक ढेला ले आई। पति ने उस डले को पानी के एक गिलास में डाल दिया और हिला दिया जिससे वह नमक पानी में मिल गया। उसकी अलग हस्ती नहीं रही। पति ने पत्नी से कहा कि उस नमक की डली को वापस निकाल। पत्नी ने उत्तर दिया कि अब वह वापस कैसे निकाली जा सकती है। पति ने कहा– तू इस पानी को चखकर देख कि इसमें नमक है या नहीं। पत्नी ने पानी को सब तरफ से चखकर कहा कि इसमें नमक है। तब पति ने कहा कि जैसे नमक पानी में घुला-मिला हुआ है वैसे ही आत्मा भी शरीर मे मिला हुआ है। यदि पैर मे कांटा लग जाय तब भी आत्मा को कष्ट होता है और सिर के बाल उखड़ जाएँ तब भी। यदि शरीर में आत्मा न हो तो वह मिट्टी के समान है, उसमें बदबू आने लगती है। आत्मा के निकल जाने पर शरीर को जला दिया जाता है फिर भी उसे कुछ वेदना नहीं होती। वेदना आत्मा के रहते अनुभव होती है। आत्मा अनुभव से ज्ञात होती है। आंखों से या हाथों से नहीं मालूम पड़ती। उसका स्वरूप ही इस प्रकार का है। उसका कोई रूप नहीं होता अतः हाथ मे लेकर देखने की इच्छा करना व्यर्थ है।

इसके उपरान्त आत्मा की सिद्धि के लिए एक और प्रमाण है। संसार में किसी भी वस्तु का सर्वथा नाश नहीं होता। वस्तु का रूपान्तर होता रहता है। एक पर्याय बदल कर दूसरी पर्याय बन जाती है। जब छोटी से छोटी वस्तु पर भी यह नियम लागू होता है तो जो आत्मा सौ वर्षों तक एक शरीर मे निवास करके बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न करता है वह सर्वथा नष्ट कैसे हो

सकता है ? इतने पर भी कोई शरीरनाश के साथ आत्मनाश की कल्पना कर लेते है तो इसका क्या उपाय ? उनकी यह भूल है। अगर किसी को अपने अनुभव से यह बात समझ में न आये तो आगम प्रमाण से इसको मानना और समझना चाहिये। मै शरीर नही हूँ किन्तु आत्मा हूँ। तथा शरीर मेरा है, मै शरीर का नही हूँ।' इस बातपर गौर करियेगा। आप अशरूफुल मखलूकात हैं अर्थात् दुनिया के बादशाह है।

दुनिया के बादशाह होकर आप कहीं हीन आचरण तो नहीं करते है इसका ध्यान रखियेगा। बीड़ी जैसी तुच्छ और स्वास्थ्यनाशक वस्तु को तो नही काम मे लाते है न ? गान्धीजी ने अपनी आत्म-कथा मे लिखा है कि काका को बीड़ी पीते देखकर मुझे भी बीड़ी पीने का शौक उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा इसमे कुछ मजा आता होगा तब तो काका पीते है। इस प्रकार सोचकर मैंने बीड़ी पीना आरम्भ किया। बीडी के लिए पैसो की जरूरत होती है। मैंने चोरी करना शुरू किया। पहले नौकरों के पैसों की चोरी करने लगा। किन्तु जब उसमे कुछ न मिलने लगा तब घर मे चोरी करने लगा। जब घर मे से भी कुछ न मिलने लगा तब विचार आया कि इस जीवन से तो मर जाना अच्छा है।' गांधीजी ने इस व्यसन को छोड़ दिया और महा पुरुष बन गये। आप लोग भी बादशाह है। देखादेखी बुराई मे न गिरकर अपना जीवन उच्च बनाइये। आपको यह सोचना चाहिये कि मै शरीर नही हूँ आत्मा हूँ। आत्मा के गुणो का जिस प्रकार विकास हो उस प्रकार सदाचरण सेवन करूंगा। तथा मस्तक चले जाने पर भी दुर्व्यसनो मे न गिरूंगा। यह नैतिक जीवन और आध्यात्मिक

जीवन की भूमिका है। सुदर्शन के चरित्र से इस बात को और पुष्ट करता हूँ। सुदर्शन चरित्र—

कर प्रपञ्च भया मूर्छानी नृप बो यों वाणी।
कौन उपाधि तुम तन बाधी कहो २ महारानी ॥रे धन॥
ॐ हूंकार करे नृपरानी शब्द न एक उचारे।
धाय पण्डिता कपट चरित्रा खोटी जाल पसारे ॥रे धन॥
महाराज तुम युद्ध सिधाये रानी देव मनाये।
जो आवें सुख से म राजा तो प्रतीति तुम पाये ॥रे धन॥
कार्ति की पूर्णिमा महोत्सव पूजा बिन बहार नहीं जाऊं।
बिसर गई यह नाथ साथ तुम ताके फ दरसाऊँ ॥रे धन.॥

सुदर्शन ने उत्सव की धमाल के समय मे पौषध किया। जब संसार विषय लालसा के तूफान पर चढ़ता है तब बुद्धिमानों और भक्तो को धर्म कार्य और प्रभु भक्ति करने का जोश चढ़ता है। वे सोचते है कि जब संसारी लोग अपना कार्य नहीं भूलते तो हम अपना काम क्यो भूले ? धर्मी धर्म पर आरूढ़ होते है और पापी पाप मार्ग पर। दोनो अपना २ काम करते हैं।

इस नियम के अनुसार साधारण जनता कौमुदी महोत्सव मनाने मे लगी और सुदर्शन पौषध व्रत में लगे।

राजा, रानी तथा नगर के लोग बाहर उत्सव मनाने गये हैं। अभया ने पण्डिता से पूछा कि धाय ! क्या आज भी मेरी मनोकामना पूरी न होगी ? पण्डिता ने कहा—अवश्य पूर्ण होगी।

अभया और पण्डिता का आपस मे माँ बेटी का सम्बन्ध है फिर भी पण्डिता अभया को कैसी बुराई की तरफ घसीट रही है। आजकल तो कोई माता ऐसा नहीं करती हैं न ? संभव है ऐसा काम माताएं न करती हों किन्तु अपनी अज्ञानता से बेटियों को फैशनेबल बनाकर इसी बुराई की तरफ आकर्षित करती हैं। लाड़ प्यार मे फैशन का पोषण कर के उन के भावी जीवन को खतरनाक बनाने मे कई मातायें निमित्त बनती हैं। यह लाड़ प्यार है या उनकी मौत को निकट लाना है।

अभया को पण्डिता ने कहा कि तू शरीर में देव आने का बहाना कर नीचे गिर पड़। फिर आगे का काम मैं सँभाल लूंगी। रानी स्त्री चरित्र में चतुर थी अतः वह शरीर कंपा कर नीचे गिर पड़ी। रानी के गिरते ही दासियाँ दौड़कर राजा के पास पहुंचीं। राजा से कहा—महाराज ! शीघ्र चलिये। न मालूम रानी को क्या हो गया है ? राजा कामवासना से पराजित था। अतः तुरत भागा हुआ रानी के पास आया। आकर रानी के मुख पर का वस्त्र हटाकर पूछने लगा कि महारानीजी क्या बात हुई है? रानी और अधिक कपड़ा तान कर हा हा हू हू करने लगी। रानी की यह दशा देखकर राजा पूछने लगा कि यह क्या हो गया है ? तब अच्छा अवसर हाथ लगा है, ऐसा मान कर पंडिता कहने लगी—महाराज ! वैसे तो यह बड़ी विनीत है। कभी आपकी आज्ञा का लोप नहीं करती। आपके आने पर आदर देती और प्रसन्नवदना होती है। किन्तु आज यह परवशा है। यह सदा आपकी कुशलता का यत्न करती रहती है। आप बाहर रह कर प्रजा की रक्षा करते हैं और यह भीतर रह कर आपकी रक्षा करती है।

जब आप युद्ध के लिए बाहर गये थे तब इसने देव की यह मनौती की थी कि यदि मेरे पतिदेव सुरक्षित लौट आये तो मै तुम्हारी पूजा करूंगी। जब तक पूजा न करूंगी तब तक महल के बाहर पैर न धरूंगी। यह रानी की प्रतिज्ञा थी। किन्तु आज आपका हुक्म शहर के बाहर जाने का हुआ। आपके हुक्म को पालने मे यह अपनी प्रतिज्ञा भूल गई। यह बड़ी आज्ञाकारिणी है। इसी आज्ञाकारिता में देव की पूजा करने की बात ध्यान में न रही और यहां चली आई है। यह देव को भूल गई मगर देव इसको कैसे भूल सकता है? मेरा खयाल है कि देव अकोप के कारण यह कांपकर नीचे गिर पड़ी है।

तब राजा बोला कि अब क्या करना चाहिये। वह उपाय बताओ जिससे देव प्रकोप शांत होकर रानी स्वस्थ हो जाय। पण्डिता ने कहा कि महाराज! आप हाथ जोड़कर सिर नमाकर देव से यह प्रार्थना करो कि रानी का इसमें कोई दोष न था। दोप मेरा था। मैंने ही रानी को महल के बाहर जाने की आज्ञा दी थी। मै वापस रानी को महल में भेज देता हूँ। जब तक आपकी पूजा करके मनौती पूरी न कर लेगी तब तक वह राजमहल से बाहर न निकलेगी। इस प्रार्थना के बाद आप देव का चमत्कार देखिये कि क्या होता है।

राजा चक्कर में आगया। भुलावे में फंस गया। स्त्रीचरित्र के लिए यह प्रसिद्ध है कि 'देवो न जानाति कुतः मनुष्यः।' स्त्री का षड़यन्त्र देव भी नहीं जान सकता तो बेचारा मनुष्य क्या जाने। पण्डिता की सलाह के अनुसार राजा ने देव के हाथ जोड़े, सिर नमाया और प्रार्थना की। इतने में पण्डिता ने रानी

की तरफ आंख का इशारा किया। रानी चट से खड़ी हुई। पण्डिता राजा से बोली कि देखिये महाराज! देव का कैसा चमत्कार है। राजा आश्चर्यान्वित होकर स्तम्भित रह गया। मन ही मन देव का महत्त्व स्वीकारने लगा।

मित्रो! आज कल भी इस प्रकार की ठगाई बहुत चलती है। धूर्तता द्वारा लोगों से देव पूजा या यज्ञ तथा कुर्बानी के नाम से अनेक जीवो की हिंसा कराई जाती है। देव पूजा, यज्ञ या कुर्बानी का सच्चा अर्थ लोग नहीं जानते।

रानी के खड़े होने पर राजा ने कहा कि अच्छा हुआ जो पण्डिता ने देव के रुष्ट होने की बात बता दी। नहीं तो आज तुम्हारी खैर न थी। अब तुम राज महल मे चली जाओ और सबसे प्रथम देव की पूजा करो। इस विषय मे पण्डिता जैसा कहे वैसा करना। अन्यथा मेरा और तुम्हारा जीवन बिगड़ जायगा। हमारा तुम्हारा सांसारिक सुख नष्ट हो जायगा।

लोग सांसारिक सुख को पकड़ कर रखना चाहते है। किन्तु, प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि ज्यों ज्यों सुख के साधनों की तरफ मन आकर्षित होता है त्यो त्यो वे दूर भागते जाते है। पुरुष की छाया का दृष्टान्त यहां ठीक लागू होता है।

राजा की आज्ञा सुन कर रानी ने कहा महाराज! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है। जो हुक्म हुआ है उसका पालन करती हूँ। इतना कह कर वह म्याने मे बैठ कर दासियो के साथ राजमहल मे चली गई।

पण्डिता अपनी प्रशंसा करने लगी कि देख री मैने राजा को किस प्रकार चकमा दिया। और रानी भी कहने लगी कि मैं

कितनी होशियार रही। मैंने कितनी कुशलता से अपना पार्ट अदा किया। इस प्रकार दोनों अपनी २ चतुराई पर फूली न समाती थीं। रानी के मन में वासना की भावना बड़ी तीव्रता से कार्य कर रही थी। उसका मन सुदर्शन पर अटका हुआ था। उसने पण्डिता से कहा कि यह सब तो ठीक हो गया। अधिक खुशी की बात तो तब होगी जब मूल काम सिद्ध हो जाय। सुदर्शन को राजमहल में लाने का खास काम तो अभी बाकी है।

पण्डिता बोली—रानी! उतावली मत होओ। सब कार्य पूरा हुआ जाता है। पवन बड़े बड़े झाड़ों को भी उखाड़ कर फेंक देता है। उसके समान साधारण तिनके की क्या वकत है? जब राजा भी हमारे दांव में फंस गया तो सुदर्शन क्या वस्तु है? तू सावधान हो जा। मैं अभी सेठ को तेरी सेवा में लाकर उपस्थित करती हूँ।

पण्डिता की हिदायत सुन कर रानी रूपी तलवार पैनी हो गई। इस तलवार का घाव कोई विरला ही सहन कर सकता है। बड़े २ ज्ञानी और योगी कहलाने वाले व्यक्ति भी इस चोट को सहन न कर सके और इसके सामने हार खा गये। पण्डितों की पण्डिताई और योगियों की योग विद्या काम के बाणों के सामने कुण्ठित हो जाती है। आइये, जरा ध्यान से देखिये कि सुदर्शन इस पैनी असिधारा की चोट से किस प्रकार अपना बचाव करता है।

एक तरफ अभया और पण्डिता ने सेठ को फंसाने के लिए जाल बिछा रक्खा है और दूसरी तरफ सेठ पौषधोपवास

व्रत लेकर आत्म चिंतवना कर रहा है। दोनो तरफ़ी पूरी तय्यारी है। पूरा मनोबल है। एक तरफ ईश्वर का बंदा है दूसरी तरफ शैतान का। इन दोनों की कैसी टक्कर होती है, कौन हारता है और कौन जीतता है, यह देखना है।

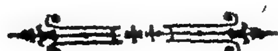
पण्डिता अभया को विशेष सावधान करती है कि ऐसा न हो कि मैं सेठ को यहां ले आऊं और तू ताकती ही रह जाय तेरा काम तू पूरा करना। यदि अवसर चूक गई तो कपिला के सामने नीचा देखना पड़ेगा।

कभी कभी लोगो को झूठा भ्रम हो जाता है। वे नीचा नहीं देखने लायक कार्य को नीचा देखने लायक मान बैठते है। और इस भ्रम मे पड़कर बड़ा अनर्थ कर डालते है संसार मे ऐसा चलता है। किन्तु धर्म पक्ष मे यह बात नहीं हो सकती। धर्म पथ पर आरूढ होने वाले लोग कैसी भी दशा मे अपने पथ से विचलित नहीं होते। वे प्रत्येक दशा मे दृढ़ रहते है।

पण्डिता सुदर्शन को राजमहल में लाने का क्या प्रयत्न करती है यह विचार आगे देखा जायगा।

राजकोट }
३-६-३६ }

दृढ़त संकल्प



शान्ति जिनेश्वर सायब सोलहवां

प्रार्थना—

परमात्मा की प्रार्थना अनेकविध की गई है और अनेकविध ही उसमे शक्ति बताई गई है। जिस प्रकार किसी सांकल की एक कड़ी पकड़ कर खींचने से सारी सांकल खींची हुई चली आती है उसी प्रकार परमात्मा के किसी एक गुण की स्तुति या प्रार्थना करने से सारे गुण उपलब्ध हो जाते हैं। सांकल की कड़ियां जिस तरह आपस मे एक दूसरी से जुड़ी रहती हैं उसी प्रकार आत्मा या परमात्मा के गुण भी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। किसी एक गुण की पूर्णता प्राप्त होने पर अन्य सारे गुण स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। यदि किसी ने सत्य को पूर्ण रूप से अपना लिया तो अन्य सारे गुण अपने आप प्राप्त हो जायंगे। जो पूर्ण सत्यवादी होगा वह पूर्ण अहिंसक, पूर्ण संतोषी और पूर्ण नम्र आदि होगा। ऐसा ज्ञानियों और अनुभवियो का कथन है।

मैं प्रतिदिन नई २ प्रार्थना बोलता हूँ और ईश्वर की नई नई शक्तियो की महिमा बताता हूँ। इससे कोई इस भ्रम मे न पड़ जाय कि क्या ग्रहण किया जाय और क्या नहीं। किसी एक गुण को अपना लेने से अन्य सारे गुण स्वतः प्राप्त हो जाते है। यह मै अभी बता चुका हूँ!

भक्त कहता है कि भगवन् ! तेरे नाम की महिमा का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। किन्तु तेरा नामोच्चारण करना मेरी शक्ति के वश की बात है। कोई व्यक्ति किसी रत्न की कीमत नहीं आंक सकता किन्तु मुफ्त में मिलने पर वह रत्न ग्रहण तो कर सकता है। इसी प्रकार तेरे गुणों की महिमा न जानने पर भी गुणकीर्तन करने से लाभ ही है। तेरे नाम-गुण का महत्त्व जान-कर उच्चारण किया जाय तब तो विशेष लाभ है।

परमात्मा के गुणों का महत्त्व वर्णन करने की क्षमता न होने पर भी उसका नामोच्चारण से शक्ति प्राप्त होती है। किन्तु उसके पहले तन मन और वचन की शुद्धि आवश्यक है। जिसका तन वचन और मन शुद्ध है वह परमात्मा का नाम लेने का पूर्ण अधिकारी है। अधिकारी बने बिना लिया गया नाम पूरी तरह लाभदायक नही होता। अधिकार और अनधिकार से लिए गये नाम मे बड़ा अंतर है।

कोई कन्या किसी युवक का किसी कारण सर नाम उच्चारण करती है। उसके बाद उस युवक के साथ उसकी सगाई हो जाती है। अब भी वह उसका नाम लेती है। किन्तु तब और अब नाम लेने मे कितना अंतर पड़ गया। पहले वह निस्पृह भाव से उसका नाम बोलतो थी किन्तु उसके साथ उसका सम्बन्ध तय हो जाने पर वह बड़ी ममता और आदर से नाम उच्चारण करती है। पुरुष वही है। किन्तु सम्बन्ध बदल गया। इसी प्रकार अनधिकारी और अधिकारी के नाम लेने मे फर्क है। मन, वचन और कर्म शुद्ध बना कर परमात्मा का नाम लेने वाला अधिकारी गिना जाता है। उसका परमात्मा के साथ गाढ़ सम्बन्ध हो जाता

है। तब नाम लेने में बड़ा अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। और अनुपम शक्ति मिलती है।

अनुपम शक्ति प्राप्त करने के लिए मन, वचन और काय की शुद्धि कर के 'ॐ शान्तिः शान्तिः ान्तिः" इस प्रकार तीन बार उच्चारण किया जाता है। भगवान् शान्तिनाथ का नामोच्चारण शान्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है न कि सांसारिक उपाधि बढ़ाने के लिए। सांसारिक उपाधि बढ़ाकर जो शान्ति चाहने की कामना करते हैं वे शान्तिनाथ के नाम का महत्त्व नहीं समझते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते

अर्थात् पूर्ण परमात्मा से पूर्णता की कामना करनी चाहिये। जो परमात्मा को पूर्ण दृष्टि से पूर्ण जानकर उससे पूर्णता की मांग करता है वह पूर्ण बन जाता है। इसका भावार्थ यह हुआ कि पूर्ण से पूर्ण चीज मांगनी चाहिये। अपूर्ण वस्तु नहीं मांगनी चाहिये। जिसमे हीरा मोती देने की शक्ति है और दे सकता है उससे मुट्ठी भर चने मांगना, क्या उचित है? पूर्ण पुरुष के हाथ मे हीरा मोती भी है और भुंगडे भी है। मांगने वाला खयाल करले कि क्या मांगना चाहिये। एक तरफ आत्मिक गुण है जो हीरा मोती से बढ़कर हैं और दूसरी तरफ संसार के भोग विलास हैं, जो भुंगड़ो से भी हीनतर है। दोनो वस्तुओ मे से क्या मांगना अधिक लाभदायी है, यह स्वयं निर्णय करना चाहिये।

जे लोकोत्तर देव नमूं लौकिक थी,
दुर्लभ सिद्ध स्वरूप प्रभु तेकिक थी।

यदि लौकिक वस्तुओ की कामना से लोकोत्तर देव को नमन करता हूँ तो निश्चय ही सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति होना दुर्लभ है। जो पूर्णता प्रदान करने वाले लोकोत्तर देव है उनसे संसार की तुच्छ वस्तुओ की मांगणी करना प्रसन्न हुए चक्रवर्ती राजा से सिके हुए चने मांगने के समान है। पूर्ण पुरुप से पूर्णता की मांग करने मे ही उसकी सार्थकता है।

शास्त्र —

आत्मा को पूर्णता किस प्रकार प्राप्त होती है, यह वात अनाथी मुनि के चरित्र से स्पष्ट करता हूँ।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से कह रहे हैं कि राजन ! तू कहता था कि मेरे यहां हाथी घोड़े रथ पैदल सेना आदि है, खजाना है, अंतः पुर है, ग्राम नगर मेरे अधिकार मे है, और सब लोग मेरी आज्ञा का पालन करते है, मै आज्ञा का ईश्वर हूँ आदि। मगर यह सब तेरा निरा अभिमान मात्र है। और कुछ नही है। इन सब वस्तुओ के कारण तू नाथ नही वन सकता बल्कि इन के कारण तू अनाथ है-पराधीन है। सब पदार्थों की सम्मिलित शक्ति से भी तू अनाथ ही है। और मनुष्यो की बात छोड़ कर पहले यह तो देख कि तेरे शरीर पर तेरी आज्ञा चलती है या नही ? मै अपने अनुभव से वताता हूँ कि इस धन-वैभव और स्वजन परिजन के कारण अपने को नाथ मान वैठना बड़ी भारी भूल है। मै भी पहले ऐसा मानता था किन्तु अब इस वात का विवेक हो गया है कि वह मेरा मनोभ्रम मात्र था। राजन् ! जिन पदार्थों को तू अपना मानता है वे कभी तुझे छोड़ कर तो नही जायंगे ? या तू ही उनको छोड़कर तो नही चला जायगा ?

क्या ये पदार्थ सदा तेरे पास बने रहेंगे ? यदि नहीं तो इन पर अभिमान करना और इनके कारण अपने को महान् समझना नितान्त भूल है।

ऐ सज्जनो ! आप लोग भी अनाथी मुनि की कही हुई बात पर थोड़ा ध्यान दो । जिन पदार्थों का आप अभिमान करते हो वे क्या सदा स्थिर रहेंगे ? क्या वे आपकी आज्ञा मानते हैं ? पदार्थ की बात एक तरफ रखकर यह भी तो विचार करो कि बड़े प्यार से पाले-पोसे इस शरीर पर आपका अधिकार चलता है या नहीं ? यदि शरीर पर आपका अधिकार चलता होता तो काले घूंघराले बालो को सफेद न होने देते । दाँतो को गिरने न देते। कभी कभी दांतो की पीड़ा के कारण खुद ही दांत निकलवाने पड़ते हैं। इस पर से सिद्ध होता है कि शरीर पर भी मनुष्य का काबू नहीं है। भला जो शरीर हमारा निकटतम साथी है, जन्म का साथी है, वह भी हमारा हुक्म नहीं मानता तो अन्य पदार्थों पर अपना स्वत्व स्वीकार करना कितनी अज्ञानता है। सब बात पर विचार करके अपना अभिमान दूर करो।

पदार्थों से सम्बन्ध जोड़कर मनुष्य किस प्रकार अनाथ बन रहे है यह बात और स्पष्ट करता हूँ। एक बार मैंने देखा कि कुछ कैदियों के साथ सिपाही जा रहे थे । वे सिपाही शायद अपने मनमें समझते रहे होंगे कि हम स्वतन्त्र हैं, हम कैदी नहीं नहीं है। किन्तु विचार पूर्वक सोचने से मालूम होता है कि वे सिपाही भी कैदियो के साथ कैदी थे । क्या वे सिपाही कैदियों को छोड़कर कहीं जा सकते है ? इस प्रकार वे भी कैदी थे। इसी प्रकार एक आदमी ने एक चञ्चल घोड़े को पकड़ रखा था। वह

समझता था कि मैं घोड़े का स्वामी हूँ। किन्तु जब दूसरे आदमी ने उसको बुलाया तब वह न जा सका। कारण कि घोड़े को छोड़ देता तो वह कहीं भाग जाता जिसे पकड़ना कठिन था। इससे ज्ञात होता है कि मनुष्य ने ही घोडा नहीं पकड़ रखा है किन्तु घोड़े ने भी मनुष्य को पकड़ रखा है।

मनुष्य ने संसार को और संसार ने मनुष्य को परस्पर पकड़ रखा है। यही अनाथता है-पराश्रयता है। पराश्रयी अपने को नाथ मानने की उच्छृङ्खलता करता है तो वह हँसी का पात्र बनता है।

श्रेणिक राजा को यही बात अनाथी अनगार समझा रहे हैं कि राजन्! तू स्वयं अनाथ है तो मेरा या किसी दूसरे का नाथ कैसे बन सकता है? इस पर राजा ने कहा कि सांसारिक पदार्थों के मोह मे फंसकर मनुष्य अनाथ बन जाता है, यह बात मैं समझ गया। किन्तु नाथ किस प्रकार बना जाता है यह भी बताइये। अनाथी मुनि आप बीती सुनाकर राजा को यह बात समझाते हैं। तथा यह भी बता रहे है कि सनाथ मे कैसी शक्ति होती है।

तओ हं एवमाहंसु दुक्खमा हु पुणो पुणो।
वेयणा अणुभविउं जे संसारम्मि अणन्तए॥
सइं च जइ मुच्चेज्जा वेयणा विउला इतो।
खंतो दंतो निरारंभो पव्वइए अणगारियं॥
एवं च चिन्तइत्ताणं पसुत्तो मि नराहिवा।
परियत्तंतीइ राईए वेयणा मे खयं गया॥

इन तीन गाथाओं में गणधरों ने बड़ा रहस्य भर दिया है। इन गाथाओं में बड़ी शक्ति है। इन गाथाओं में प्रतिपादित शक्ति हर आत्मा में विद्यमान है किन्तु आत्मा उसे भूल रहा है। आत्मा किस प्रकार सुखी होता है और किस प्रकार दुःखी यह बात इन गाथाओं से समझना चाहिये।

अनाथी मुनि कहते हैं कि राजन्! जब मेरे माता पिता भाई, बहन और स्त्री आदि सब कुटुम्बी जन मेरा दुःख मिटाने में समर्थ न हुए तब मैंने सोचा कि ये सब लोग मेरे नहीं है और न मैं इनका नाथ हूँ। ये मेरी रक्षा नहीं कर सकते और मैं इनकी रक्षा नहीं कर सकता! मैंने सोचा कि इस प्रकार की वेदना मैं पहली बार ही नहीं भोग रहा हूँ किन्तु अनेक भवों में अनेक बार भोग चुका हूँ। अबकी बार इस वेदना से शिक्षा ग्रहण कर के आत्मकल्याण साधना चाहिये।

साधारण लोग दुःख से घबड़ाते हैं और दूर भागना चाहते हैं किन्तु महापुरुष दुःख के कूड़े कचरे में से भी रत्न ढूंढ निकालते हैं। दुःख भी सुख की तरह अनित्य है। ये तो छाया और बादल है जो आते रहते हैं और जाते रहते हैं। सातवीं नरक के घोर कष्ट और तैंतीस सागरोपम की आयु भी यह आत्मा पूरी कर चुका है। आत्मा वैसा का वैसा ही है। उस में कोई अन्तर नहीं हुआ। काल समाप्त हो जाता है किन्तु उस काल और दुःख-सुख को सहन करने वाला आत्मा सदा अमर है। जब से यह सृष्टि है तब से आत्मा है। मैं भी अनादि हूँ और संसार भी अनादिकालीन है! संसार में और आत्मा में पूर्व

पश्चात् का कोई क्रम नहीं है। जैसे दो आँख और दो कान में से कौन पहले बना और कौन पीछे यह क्रम नहीं होता–दोनो एक साथ बनते है–वैसे ही आत्मा और सृष्टि दोनों युगपत् हैं। जैसे गाय के दोनो सींगो मे पहले पीछे का क्रम नही है वैसे आत्मा और संसार मे भी क्रम नही है। इस प्रकार यह आत्मा सदा से संसार मे है। इसने अनन्त भवो में अनन्त बार घोर वेदनाएँ सही है। आत्मा को दु:ख क्यो होते है ? इन दु:खों का स्रोत कहाँ है? आदि बातो का गहन चितन मनन किया जयातो इसी परिणाम पर पहुचना पड़ता है कि आत्मा ने अपने संकल्प विकल्प से स्वतः दु:ख पैदा किये है। जैसा संकल्प करता है वैसा सुख दु:ख भोगता है।

यहां थोडी दार्शनिक चर्चा खड़ी होती है। कोई दार्शनिक कहते है कि आत्मा अज्ञानी है अतः स्वयं अपना नियामक नहीं बन सकता। आत्मा अज्ञान वश कर्म कर डालता है किन्तु फल नहीं भोगना चाहता। फल भोगाने वाला नियामक ईश्वर है। आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है, फल भोगने मे स्वतंत्र नहीं है, ईश्वराधीन है। फल ईश्वर भुगताता है।

इस दार्शनिक विचार धारा पर विचार करने से मालूम होता है कि इस विषय मे कितनी पोची दलील दी गई है। कर्म कर के जीवात्मा उसके फल से दूर भागना चाहता है इसलिए ईश्वर फल भुगतवाता है। यह है दलील। कोई मनुष्य गर्म भोजन करके धूप मे बैठे और इच्छा करे कि प्यास न लगे तो क्या उसके इच्छा करने मात्र से प्यास रुक सकती है ? प्यास अवश्य लगेगी। जैसा कर्म कर लिया उसका फल इच्छा या बिना इच्छा के भुगतना

ही पड़ेगा। इसमें ईश्वर क्या करेगा ? किसी भी क्रिया या कर्म का परिणाम उसके कर्त्ता को भोगना पड़ता है।

कुरान शरीफ में कहा है कि हे मोहम्मद ! जो खुद से नहीं बिगड़ता उसको मैं नहीं बिगाड़ सकता। और जो स्वयं नहीं सुधरता उसको मै भी नहीं सुधार सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि कुरान शरीफ भी खुदा को नियामक नही मानता किन्तु आत्मा को ही सुख दुःख का कर्ता और भोक्ता मानता है।

एक प्रमाण और देता हूँ। एक मनुष्य ने किसी के यहां चोरी की। अब विचार करिये कि जिसके यहां चोरी हुई उसने नया कर्म बांधा या पूर्व कृत कर्म भोगा ? यदि यह कहा जावे कि उसने पूर्वकृत पाप का फल भोगा तो जिसने चोरी की उसको चोरी मे प्रेरणा देने वाला ईश्वर ठहरा। क्यो कि ईश्वर ने जिसके यहाँ चोरी कराकर फल भुगतवाना था उसके यहां चोरी करवाई है। किसी को उसके पूर्व जन्म के फल भुगताने के लिए ईश्वर किसी के द्वारा चोरी करवाता है यह इससे सिद्ध होता है। किन्तु यह बात संगत नही बैठती। ईश्वर न फल देता है और न किसी प्रकार की प्रेरणा। वह निरञ्जन निराकार है। जीव स्वयं अपने संकल्प से जाल बनाता है और उसमे फंसता है। और जब उसे सद् ज्ञान होता है तब उस जाल को तोड़ फैकता है।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से कह रहे है कि उस वेदना के अवसर मुझे यह विवेक हो गया कि मैं अपने संकल्पो से सुखी या दुःखी हूँ।

पुनः प्रश्न खड़ा होता है कि आत्मा सुखी बनने का संकल्प तो कर सकता है मगर दुःखी होने का संकल्प कैसे कर सकता है? तथा आत्मा अज्ञानी है अतः खुद का नियमन कैसे कर सकता है? यदि यह कहा जाय कि प्रकृति यह व्यवस्था करती है तो भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रकृति स्वयं जड़ है। जो अपने आप को नही जानती वह दूसरो की क्या व्यवस्था करेगी?

यह ठीक है कि आत्मा दुःख की इच्छा नही करती। किन्तु यह देखिये कि वह कृत्य कैसा करती है। आम का पेड लगाती है या बंबूल का? बंबूल का पेड़ लगाकर आम खाने की इच्छा करना अज्ञानता ही है। जो आत्मा दुराचरण का सेवन करती है वह यदि सुख की कामना करती है तो यह उसकी अज्ञानता है। उसके चाहने न चाहने से फल नहीं रुक सकता। जिस स्त्री ने गर्भ धारण किया है उसके न चाहने से प्रसव पीड़ा रुक नही जाती। प्रकृति जड़ है किन्तु वह अपना काम करती है। जैसे दूध को इस बात का ज्ञान नही होता कि मुझ मे इतना रस भाग है और इतना खल भाग। मुझ मे पुरुप के पेट मे पहुंच कर इतनी शक्ति पैदा करने का सामर्थ्य है आदि वह नहीं जानता। तथा पुरुष भी यह नही जानता कि जो दूध मैने पिया है वह पेट मे पहुंच कर इस इस रूप मे परिणत होता है। किन्तु दूध पेट मे पहुंच कर अपना काम करता है। दूध को उदरस्थ करने पर जठराग्नि के ताप से वह खल भाग और रस भाग मे विभक्त हो जाता है। रस भाग मे से जितना भाग आँख को मिलना चाहिए उतना आंख को, जितना मस्तिष्क को मिलना चाहिये उतना मस्तिष्क को और जितना शरीर के अन्य हिस्सो को मिलना

चाहिये उतना अन्य हिस्सो को मिल जाता है। इस प्रक्रिया में किसी दूसरे को कुछ नही करना पड़ता। अपने आप सब हो जाता है।

इसी प्रकार शरीर की या आत्मा की जैसी प्रकृति होती है वैसे काम अपने आप हो जाते है। यदि आप प्रकृति द्वारा होने वाले सारे खेलो को समझने लग जावे तब तो आप पूर्ण-पुरुष बन जावे। आपके न जानने पर भी प्रकृति सारे खेल करती रहती है। प्रकृति के इस खेल के कारण आत्मा अपने किये कर्मों का फल भोगने के लिए विवश होती है। अतः ईश्वर या अन्य शक्ति द्वारा कर्मफल भुगताने की बात युक्तिसंगत नहीं है।

राजन् ! मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि मेरे संकल्प से उत्प दुःख व्यर्थ की हाय-हाय करने से नही मिट सकते। संकल्प से उत्पन्न दुःख संकल्प से ही मिटाये जा सकते है। यह बात निश्चित है कि दुःख मिट जाते हैं। पहले भी अनेक बार दुःख उत्पन्न हुए थे और वे मिट गये। इसलिए यह वेदना भी मिट सकती है। मेरे संकल्प से बुलाई गई वेदना को मैं स्वयं ही ठहरा रहा हूँ।

संकल्प का अर्थ है निश्चय। सुख दुःख को आत्मा अपने निश्चय से ठहरा रखता है। किसी काम को दृढ़तापूर्वक करने न करने का विचार संकल्प या निश्चय कहा जाता है। उदाहरणार्थ समझिये कि किसी ने आपको अशुचि पदार्थ देने की बात कही। आप अशुचि पदार्थ किसी हालत मे लेना पसंद न करेंगे। क्योंकि अशुचि न लेने का आपका दृढ़तम निश्चय है। कई संकल्प स्वयंकृत होते है और कई पूर्वजो के संस्कारो से प्राप्त होते है। जैनकुल मे

उत्पन्न बालक किसी हालत में मांस खाना पसंद न करेगा। यह वंशगत और जातिगत संस्कार है। जो मांस नहीं खाता उसे मांस खाने का स्वप्न भी नहीं आता। क्योंकि मांस खाने का उसका संकल्प नहीं है। स्वप्न में पर-स्त्री-गमन की बात देखी जाती होगी। किन्तु क्या स्व-माता के साथ संभोग करने का स्वप्न कोई देखता है ?, मेरा खयाल है ऐसा स्वप्न कोई नहीं देखता। इसका कारण है। माता के साथ सदा पवित्र सम्बन्ध रहता है और ऐसी दुष्ट कल्पना कोई मनुष्य नहीं करता।

अतः यह बात निश्चित होती है कि जो कुछ होता है वह इस जन्म के संकल्पों से या पूर्वजन्म के संकल्पों से। जो मनुष्य अच्छे विचार रखता है, अपनी माता के समान सब स्त्रियों को देखता है, त्याज्य वस्तुओं का सेवन नहीं करता, किसी का अनिष्ट चिन्तन नहीं करता वह उन्नत बन जाता है। उसका संकल्प पवित्र गिना जाता है।

सुदर्शन चरित्र—

संकल्प कैसा होना चाहिए इस बात को सुदर्शन के चरित्र में देखिये। उसका संकल्प है कि मैं मनोरमा को छोड़ कर संसार की अन्य सब स्त्रियों को माता, बहिन और बेटी की दृष्टि से देखूंगा। इस संकल्प पर वह कितना दृढ़ रहा यह हमें देखना है।

मूर्ति लेकर गई बाहर को पहरेदार भरमाई।
पौषधशाला सेठ सुदर्शन मूर्ति फेंक ले आई ॥ रे धन०॥
पौषध मौन सेठ नहीं बोले बैठा ध्यान लगाई।
अभया कर शृङ्गार सेठ के खड़ी सामने ई ॥ रे धन०॥

सेठ का भी संकल्प है और रानी अभया का भी संकल्प है। संकल्प सुन्दर भी होते है और असुन्दर भी। सुदर्शन का संकल्प सुन्दर है। अभया का संकल्प निकृष्ट है। जिस संकल्प में अधिक दृढ़ता होती है वह विजय प्राप्त करता है। अभया और सुदर्शन के संकल्पों के बलाबल की परीक्षा है। चाहे अच्छा संकल्प हो चाहे बुरा किन्तु जो अपने संकल्प पर दृढ़ रहता है उसकी जय होती है।

संकल्प के आधार से कर्म होता है या कर्म के आधार से संकल्प यह विचारणीय बात है। कहा यह जाता है कि कर्मानुसारिणी बुद्धि होती है। किन्तु इस कथन में निर्बलता छिपी है। अनाथी मुनि ने कहा है:—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।

अर्थात् कर्म संकल्प के अधीन हैं। यदि मनुष्य का कर्म को निकाल फैंकने का संकल्प हो तो वह कदापि नहीं ठहर सकता। यदि सुदर्शन यह मान बैठता कि मेरे कर्म ऐसे ही है कि मैं रानी के साथ सम्बन्ध कर लूं तो क्या वह महापुरुष की श्रेणी में गिना जाता और क्या आप हम इस प्रकार उसके गुण-गान करते। कई मनुष्य यह मान कर दुःख भोग रहे है कि क्या करें हमारे कर्म ऐसे ही है, हमारे नसीब में ऐसा ही लिखा है इस लिए कष्ट उठा रहे है। किन्तु वे यह नहीं सोचते कि दुःख भोग उनके संकल्प बल की कमी के कारण है। कर्म तुम्हारे खुद के किये हुए है उनको अपने संकल्प से दूर कर सकते हो। अतः कर्म का नाम लेकर कोई बुरा काम करना ठीक नहीं है। बीड़ी, तमाखू या

गाँजा-भाँग पीने की आदत जिस मनुष्य ने डाल रखी है वह यदि चाहे तो संकल्प बल से इस आदत को मिटा सकता है। किसी भी प्रकार की बुरी आदत को संकल्प बल से जीता जा सकता है।

अभया ने पंडिता से कहा कि आज सुन्दर अवसर है। राजा आदि सर्व लोग बाहर उत्सव मना रहे है। महल मे मैं अकेली हूँ। सेठ सुदर्शन भी पौपध शाला मे अकेला है। ऐसा सुयोग हाथ आना कठिन है। पंडिता बोली यह सब मेरे ध्यान मे है।

पण्डिता गाजे-बाजे के साथ सिर पर मूर्ति रख कर निकली। पौषध शाला के निकट जाकर साथ वाले लोगो को कहा कि तुम लोग जरा ठहरना मै आती हूँ। मै एक क्रिया पूरी करने जाती हूं। इस प्रकार सब को भ्रम मे रख कर वह पौपधशाला मे गई। वहाँ उस मूर्ति को तो कहीं पटक दी और उसके स्थान पर सुदर्शन को उठा लिया। सुदर्शन से कह दिया कि आप अपनी धर्म क्रिया मत छोड़ना। आप अपना व्रत नियम और मौन साधे रहना मै अपना कार्य करती हूँ। सेठ व्रत मे था अतः उसके उठा ले जाने पर भी मौन नही तोड़ा। वह मूर्ति की जगह सुदर्शन को बिठाकर सिर पर रख कर सब के साथ वापस हो गई।

यदि सुदर्शन बोलता तो क्या वह उसे उठा कर ले जा सकती ? आज कल देखा जाता है कि पौपधव्रत मे मौन रखने का रिवाज नहीं है। थोड़ा कोई कारण हो जाता है कि एक दम हलचल मच जाती है। उदयपुर (मेवाड़) का जिक्र है कि एक बार

संवत्सरी के दिन रात को एक कुत्ता इधर से उधर कूदता हुआ निकल गया। अनेक श्रावकों ने पौषध कर रखे थे। कुत्ते के कारण बड़ा होहल्ला मच गया। कोई कहने लगा अरे कोई चौर है, कोई कहने लगा भूत है। जितने मुख उतनी बाते होने लगी। यह होहल्ला मैंने भी ऊपर सुना। अंत मे छानवीन करने पर ज्ञात हुआ कि एक कुत्ता इधर से उधर कूदता हुआ निकल गया है। इस प्रकार लोग एक कुत्ते से भी डर जाते हैं और हल्ला मचा देते है। इतनी भी दृढ़ता नहीं रखते। देव से जीतने की जिसमें शक्ति है वह साधारण वस्तुओ से भय खाये यह अच्छा नहीं गिना जाता। संकल्प बल की कमजोरी भय का कारण है।

पण्डिता के सिर पर सुदर्शन मूर्तिवत् निश्चल बैठा है। किसी भाई के मन में यह विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि सुदर्शन इस प्रकार मिट्टी जैसा क्यो बन गया। वह बोला क्यों नहीं अथवा पंडिता को दूर क्यों नही हटा दिया। न बोलने या दूर न हटाने का कारण यह है कि सुदर्शन शरीर की प्रवृत्ति त्याग कर धर्म ध्यान मे बैठा था। उसको इस शरीर से कोई मतलब न था। इस पर जो कुछ बीते बीतती रहे। वह शरीर से उदासीन था।

पण्डिता सुदर्शन को लेकर महल में चल दी। पहरे वाले सिपाही समझ रहे थे कि यह मूर्ति ही है। एकान्त स्थान में बिठा कर पंडिता अभया के पास दौड़ी गई। उसने कहा, मैंने अपना काम पूरा कर दिया है। अब तू जाने तेरा काम जाने। सुदर्शन जहाँ बिठाया गया वहाँ ध्यानस्थ बैठा है। सुदर्शन के लिए महल और पौषध शाला समान है।

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥

सुख हो या दुःख हो, वैरी हो या बन्धु वर्ग हो, किसी का संयोग हो याविछोह हो, राजमहल हो या जंगल हो सब प्रकार ममत्व भाव मिट कर सब संयोगो मे मेरा समान भाव बना रहे। प्रतिदिन ऐसी भावना करने वाले सुदर्शन के लिए राजमहल कुछ विशेषता नहीं रखते थे। उसके मन मे यह विचार था कि महल हो या जेल हो मुझे कहीं भी अपना व्रत पालना है। मेरा शरीर रहे या चला जाय किन्तु मेरी आत्मा मे किसी प्रकार की हानि करने की किसी की शक्ति नहीं है।

अभया रानी शृङ्गार सजकर बड़ी उमंग से चली। स्त्रियो को शृङ्गार का बड़ा शौक होता है। वे शृङ्गार को अपना बल मानती है। शृङ्गार के द्वारा सुन्दरी बनने की कोशिश लंगड़े के लिए लकड़ी की सहायता के समान है। फिर भी इसका मोह नहीं छूटता। अभया स्वयं सुन्दरी थी। ऊपर से उसने और शृङ्गार किया जिससे वह अपने को अधिक रूपवती अनुभव करने लगी। शृङ्गार सजकर स्त्रियॉ अपने को अधिक रूपवती मानती है किन्तु वे अपनी कमजोरी को नहीं पहचानती। रूप की कमी को पूरा करने के लिए शृङ्गार का सहारा लिया जाता है। कामी पुरुष भी उनकी इस कमजोरी को नही समझते और रूप शृङ्गार की आग मे कूद कर जल कर खाक हो जाते है।

अभया रमझम करती हुई सुदर्शन के सामने आकर खड़ी गई। वह मन में अभिमान करती हुई आ रही थी कि मेरे नेवरों झंकार सुन कर सुदर्शन की हृत्तंत्री के तार हिल उठेंगे। किंतु ने उसी निश्चल भाव में बैठे देख कर उसका उत्साह कमजोर हुआ। उसने विचार किया कि मुझे अपना काम निकालना अतः इस वक्त गुस्सा करने से कुछ लाभ न होगा। सामनीति काम लेना चाहिये।

हाथ जोड़ अमृत सम मीठा बोले मुख से बोल।
मैं रानी तुम पुरजन मानी सरखी सरखी तोल ॥रे धन.॥
कल्पवृक्ष सम काया तेरी मैं अमृत की वेल।
मौन खोल निरखो मुझ नयना ध्यान ढोंग दो मेल ॥रे धन.॥

सुदर्शन के समीप जाकर अभया ने हाथ जोड़ कर उसे नमस्कार किया। सुदर्शन के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी रानी अभया की दशा पर किंचित् गौर कीजिये। वह राजरानी है, इसलिए प्रजा की माता है। माता के पैरों पर पुत्र गिरा करते हैं न कि माताएँ पुत्र के पैरों पर। किन्तु जब इन्सान पर कामवासना का भूत सवार हो जाता है तब वह गौरवमय पद भी विसर जाता है। आत्मा में जब नीच वासना प्रविष्ट हो जाती है तब मनुष्य नीचातिनीच काम करने के लिए भी तय्यार हो जाता है।

वस्तुतः विष से भरे हुए किन्तु प्रकट में अमृत के समान मालूम देने वाले वचन रानी के मुख से निकले। वह कहने लगी— आप चुप क्या बैठे है? जरा विचार करो कि आपकी और मेरी

जोड़ी कितनी सुन्दर है। आप नगर सेठ हैं और मै राजरानी हूँ। आप नगर के नायक है और मै राज्य की नायिका। इतना अच्छा संयोग मिलने पर भी आप मौनधारण करके बैठे है। आंखे खोल कर मेरी ओर निहारिये। इस ढोंग को छोड़ दीजिये और अपनी आंखो को सार्थक कीजिये।

सेठ रानी के वचन चुपचाप सुन रहे थे। वे रानी के कथन के मूलभूत रूप पर विचार कर रहे थे। मुझे भगवान् महावीर से जो ज्ञान मिला है उसकी आज कसौटी है। आज मेरी अग्निपरीक्षा है। इसमे तपकर मैं खरा निकलता हूँ या इसमें जलकर भस्म होता हूँ इस बात की परीक्षा है।

जो ज्ञानी होते है वे किसी बात को केवल ऊपरी दृष्टि से नहीं देखते किन्तु वस्तु के मूल को खोजने की कोशिश करते हैं। सम्यग्ज्ञानी या आध्यात्मिक दृष्टि-सम्पन्न पुरुप वस्तु के मूलरूप पर ध्यान लगाते है।

सुदर्शन विचारने लगे कि यह नारी इतना तो जानती है कि वह राजा की रानी है। किन्तु यह नही सोचती कि जब वह राजा की रानी है तो राजा की आज्ञा बिना किसी पर पुरुष की गुलामी क्यो स्वीकार करना चाहती है। रानी होते हुए भी अज्ञान और वासना के कारण यह ऐसा कह रही है। यदि मै इन वचनो पर न लुभाया तो मेरे लिए ये वचन अमृतमय सिद्ध होगे। यह रानी अपने बड़प्पन को समझती है किन्तु यह नही समझती कि बड़प्पन को रक्षित रखना चाहिए या हीन काम करके उस पर धब्बा लगाना चाहिए। यदि हम दोनो माता-पुत्र का सम्बन्ध

छोड़कर पतित हो जावें तो क्या मेरा नगर सेठ का पद और क्या रानी का राजमाता का पद सुरक्षित रह सकेंगे ? हम लोगों द्वारा मर्यादा पालन होने से ही इन पदों की शोभा है। यह है सेठ सुदर्शन का मानसिक चिंतन।

इधर रानी कहती है कि सेठजी ! तुम्हारी और मेरी योग्य जोड़ी है। तुम कल्पवृक्ष हो और मैं अमृत वेल। कल्पवृक्ष का सहारा पाकर अमृत वेल सुन्दर विकास कर सकती है। इसलिए मौन खोल दो।

किन्तु इस कथन पर सुदर्शन यह सोचते हैं कि इसने मुझे कल्पवृक्ष कहा है अतः मैं कल्पवृक्ष के योग्य अपना कर्त्तव्य निभाऊँ तभी मेरी शोभा है। मुझ कल्पवृक्ष का सहारा लेकर रानी अमृत वेल के बजाय विष वेल बन जाय, यह मेरे योग्य कार्य नहीं है। फिर मैं कल्पवृक्ष कैसा ? सुदर्शन आत्मा को दृढ़ रखने का विचार कर रहे हैं। किन्तु रानी उनके मौन से परेशान होकर और विनय भाव धारण करके विनती करती है।

करूं जतन मैं जावजीव लग प्राण बरोबर मान।
तन धन जीवन तुम पर पैण आज से है जान ॥रे धन०॥
व्यर्थ जन्म मुझ गया ।ज ग खबर न तुमरी पाई।
।ज सुदिन यह हुआ सेठजी धाय पण्डिता ।ई ॥रे धन०॥

सुदर्शन को चुप देखकर रानी विचारने लगी कि मैं भूलती हूँ। यह बनिया है। बनिया लोग डरपोक होते हैं। जरा जरा-सी बात का उनको बड़ा भय लगता है। संभव है मुझे रानी

समझकर राजा के डर से यह मौन न खोलता हो। अतः इन को आश्वासन देकर निर्भय बना देना चाहिए। ऐसा विचार कर वह कहने लगी कि सेठजी ! मैं आपसे सम्बन्ध जोड़ रही हूँ वह कुछ दिनो के लिए नहीं किन्तु यावज्जीवन के लिए जोड़ रही हूँ। मेरा तन, मन, धन और सर्वस्व तुम को अर्पण है। तुम यह भय मन से निकाल दो कि राजा इस बात को जान जावेंगे तो क्या होगा ? हम स्त्रियाँ है। हमारे भेद को ब्रह्मा भी नहीं जान सकते तो मनुष्य की क्या बिसात है ? तुम विश्वास रखो कि यह भेद कोई न जानने पावेगा। अतः निर्भय होकर मौन तोड़ो और मुझ से प्रेमालाप करो।

एकान्त स्थान, सुन्दरी स्त्री, स्वेच्छा से भोग का निमंत्रण और युवावस्था, सब का योग है, फिर भी सुदर्शन अपने संकल्प पर दृढ़ है। वर्त्तमान युग के महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी का संकल्प बल भी बड़ा दृढ़ था। वे जैन मुनि श्री बेचरजी स्वामी से विलायत जाने से पूर्व मांस, मदिरा और पर-स्त्री-गमन का त्याग लेकर रवाना हुए थे। यदि वे इन बातों को छोड़ने का संकल्प किये बिना विलायत चले जाते तो न मालूम उनकी क्या दशा होती। वे अपने आपको दृढ़ रख सकते या नहीं ? इसमें संदेह को स्थान था। किन्तु जाने के पूर्व किये हुए दृढ़ संकल्प का ही यह फल था कि वे अनुकूल संयोग उपस्थित होने पर भी ब्रह्म-चर्य व्रत पर दृढ़ बने रहे। संकल्प बल मे ऐसी शक्ति है कि वह प्रसंग पर मनुष्य को पतन के गड्ढे मे गिरने से बचा लेता है।

सुदर्शन रानी का वक्तव्य सुनकर विचार कर रहा है कि जीवन पर्यन्त सम्बन्ध निभाने की बात रानी कह रही है सो ठीक ही है। माता का कर्त्तव्य है कि वह पुत्र के साथ अपना स्नेह

सम्बन्ध यावज्जीवन तक निभाये। मगर इसके मन में सम्बन्ध निभाने की जो बात है वह बुरी है। जिस रूप और यौवन पर यह अभिमान कर रही है उन पर राजा का अधिकार है। यह विवाह के अवसर पर संकल्प कर चुकी है कि इस रूप-यौवन पर राजा दधिवाहन का अधिकार है। प्रथम राजा के साथ किये हुए संकल्प को यह तोड़ रही है तो मेरे साथ जो संकल्प करती है उसे क्या निभायेगी? जो एक बार अपना संकल्प तोड़ता है क्या पता कि दूसरी बार वह न तोड़ेगा? जो एक बार भ्रष्ट होता है दूसरी बार भी हो सकता है।

विवेक-भ्रष्टानाम् भवति विनिपातः शतमुखः।

जो एक बार विवेक भ्रष्ट हो जाता है उसका अनेक बार पतन हो सकता है। एक सीढ़ी चूकने पर अनेक सीढ़ियाँ चूकनी पड़ती हैं। जब राजा दधिवाहन के साथ किये हुए वचन को यह नहीं निभाती तो मेरे साथ क्या निभायेगी?

आप लोगो ने भी लग्न सम्बन्ध किया है। पति पत्नी ने परस्पर एक दूसरे के होकर रहने का संकल्प किया होगा। आप लोग उस सकल्प को तोड़ते तो नहीं? आपने यह प्रतिज्ञा की हुई है कि स्व ी के सिवा अन्य ि यॉ माँ वहिन के समान हैं। उस प्रतिज्ञा का पालन करते हैं न? धर्म का पालन कराने के लिए राजकानून की तरह कोई हथियार लेकर आपके पीछे नहीं चल सकता। इसके लिए आत्मा खुद अपनी निगरानी रखे यही संभव उपाय है। जो स्वयं धर्म पालन की इच्छा रखता हो वही सुदर्शन के समान अपने धर्म की रक्षा कर सकता है।

राजकोट }
ता० ४-६-३६ }

धर्म-श्रद्धा की परीक्षा



कुन्थुजिनराज तू ऐसो नहीं देव तो जैसो ।

प्रार्थना—

उच्च कोटि की प्रार्थना में आत्मा और परमात्मा की एकता की भावना होती है । इस पर से शंका होती है कि कहाँ तो विकारो से भरा हुआ आत्मा और कहाँ शुद्ध निर्मल स्वरूपी भगवान् कुंथुनाथ ? दोनो में बृहदन्तर है । इन में एकता की बात कैसी ? शेखचिल्ली द्वारा बादशाह बनने की कल्पना के समान यह कल्पना है । सकर्म आत्मा को कर्म रहित परमात्मा से समानता कैसी ?

ऐसी शङ्का उत्पन्न होना स्वाभाविक है । यद्यपि आत्मा और परमात्मा मे बड़ा अंतर है किन्तु मूल रूप दोनो का एक है । उस मूल रूप को ध्यान मे रख कर ज्ञानी जन कहते हैं कि दोनो समान हैं । भेद जो मालूम देता है वह स्वाभाविक नहीं है किन्तु वैभाविक है । शास्त्रो मे भगवान् ने जहाँ उच्च तत्त्वों का विवेचन किया है वहां स्पष्ट इस बात का प्रतिपादन किया है कि मेरा आत्मा और तुम्हारा आत्मा समान हैं । इस विषयक कई प्रमाण शास्त्रो मे भी मौजूद है । अभी मै इतना कहता हूं कि यदि लक्ष्यार्थ और वाच्यार्थ को अच्छी तरह समझ लिया जाय तो यह शंका स्वतः हल हो जायगी ।

आत्मा और परमात्मा का वाच्यार्थ भिन्न है किन्तु लक्ष्यार्थ एक है। जैसे कभी मनुष्य के लिए कहा जाय कि वह सिंह है। इस पर किसी ने तर्क किया कि मनुष्य सिंह कैसे है? सिंह पशु है और मनुष्य मानव है। दोनों में बड़ा अंतर है। फिर मनुष्य को सिंह कहना कहाँ तक उचित है? यहाँ तर्क करने वाले ने केवल वाच्यार्थ को ध्यान में रख कर तर्क की है। मनुष्य सिंह नहीं बन सकता क्योंकि एक भव में दूसरी खोली धारण नहीं की जा सकती। यह बात वाजिब है। किन्तु मनुष्य को सिंह कहने वाले का लक्ष्यार्थ समझना चाहिये। वह किस दृष्टि से मनुष्य को सिंह कहता है इस पर विचार करना चाहिये। मनुष्य और सिंह में किस बात की—किस गुण की एकता है यह देखना चाहिये। सिंह में शूरता का गुण है उस गुण को लक्ष्य में लेकर मनुष्य को सिंह कहा जाता है। अतः लक्ष्यार्थ की दृष्टि से इस कथन में कोई बाधा नहीं आती। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में वाच्यार्थ की दृष्टि से भेद होने पर भी लक्ष्यार्थ की दृष्टि से अभेद है। एक चैतन्य नामक गुण ऐसा है जो आत्मा मे भी है और परमात्मा में भी। इस गुण को ध्यान मे लेकर आत्मा परमात्मा को एकता प्रतिपादित की जाती है। कर्म और अज्ञान हटाये जा सकते हैं। ये आत्मा की स्वाभाविक अवस्था नहीं है। ये तो आ लगते हैं सो वापस भगाये भी जा सकते है। यद्यपि कर्म और आत्मा का अनादिकालीन सम्बन्ध है किन्तु वह प्रवाह की अपेक्षा से अनादिकालीन माना जाता है। न कि किसी एक प्रकार की कर्मवर्गणा की अपेक्षा से। सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम के बाद कर्मवर्गणा से आत्मा का सम्बन्ध छूट जाता है। इसलिए कर्म और आत्मा का

सम्बन्ध स्थायी नहीं है। चैतन्यगुण आत्मा परमात्मा में स्थायी है। उसको लक्ष्य मे लेकर कहा है—

तुम्ही हम एकता जानूं द्वैतभ्रम कल्पना मानूं।

हे प्रभो! चैतन्य की दृष्टि से तू और मैं एक हैं। यह जो भेद दृष्टिगोचर होता है वह वास्तविक नहीं है।

इस कथन से आप लोगो को विश्वास हो जाना चाहिए कि हमारी आत्मा परमात्मा के समान है। किन्तु केवल विश्वास करके बैठ जाने मात्र से काम न चलेगा। जब तक आत्मा और परमात्मा की एकता मे बाधक कारणो को मिटाने के लिए पुरुषार्थ न किया जायगा तब तक परमात्मा के समान होने पर भी आत्मा संसार-सागर में गोता लगाता रहेगा और अपने अज्ञान से दुःखी होता रहेगा।

उद्योग को क्रिया भी कहा जाता है। वैसे मनुष्य किसी न किसी प्रकार की क्रिया करता रहता है। मन से, वचन से, काया से कुछ न कुछ करता रहता है। एक क्षण के लिए भी चुप नहीं रहता।

न जातुचित् तिष्ठत्यकर्मकृत्।

गीता मे भी कहा है कि जीवात्मा एक क्षण के लिए भी कर्मशून्य नही रहता। किन्तु अज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से मुक्ति-रूपी लाभ नहीं होता। ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से मुक्ति मे सहायता मिलती है।

शास्त्र—

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से यही बात कह रहे हैं कि राजन्! अनादिकाल से मेरी आत्मा अज्ञान कष्ट सहन कर रही थी किन्तु उससे मेरी आत्मा का कुछ भला न हुआ। इस वेदना में मुझे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ और मैंने ज्ञानपूर्वक वेदना को सहा। इस तत्त्व तक मैं पहुँच गया कि वेदना मेरी उपार्जन की हुई है अतः मै ही उसको मिटा सकता हूँ। दूसरे किसी का सामर्थ्य नही है कि वह मेरी वेदना मिटा सके। अतः मैंने वेदना मिटाने और सनाथ बनने का संकल्प कर लिया।

प्रश्न होता है कि क्या दुःख मिटाने का संकल्प कर लेने से दुःख चला जाता है? हाँ, ज्ञानियो का ऐसा कथन और अनुभव है कि संकल्पशक्ति से दुःख दूर हो जाता है। संकल्प करना यानी आत्मा को जागृत करना है। जो जागृत होता है उसे कोई दुःख नही हो सकता। जागते हुए व्यक्ति के घर मे प्रवेश करके चोरी करने की चोर की हिम्मत नही हो सकती। जो गाफिल हो, डरपोक हो और सोया हुआ हो वहाँ चोर का दाव लगता है। इसी प्रकार आत्मा जागृत हो सावधान हो, और सचेष्ट हो तो कर्मो की क्या शक्ति है जो टिक सके?

आप कहेंगे कि चोर की बात हम प्रत्यक्ष देखते है। हमारे चिल्लाने से वे भाग जाते हैं। किन्तु कर्मो को किसने दे [illegible] है। आत्मा के सजग रहने से हट जाते है या नहीं। इसमें संदेह बना रहता है। कर्मों को आप नहीं देखते है किन्तु कर्मों का परिणाम-फल देखकर क्या कर्म का आपको ज्ञान नहीं होता? बहुत-

सी बातें स्वयं नहीं जानी जातीं किन्तु उनका परिणाम देखकर उनके होने का निश्चय होता है। जब किसी प्रकार की बीमारी हो जाती है तब यह मानना पड़ता है कि हमारे स्वास्थ्य सम्बन्धी किसी गफलत के कारण यह हुई है। बिना कारण कोई कार्य नहीं हो सकता। कार्य मौजूद है तो कारण मानना ही पड़ेगा। चाहे हम जान सकें या न जान सकें परन्तु कारण अवश्य होता है। यदि स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई भूल न हुई हो और फिर भी कोई बीमारी लागू हुई तो समझना चाहिये पूर्वजन्म का कोई अस्वास्थ्यकर बीज आत्मा में मौजूद है जो निमित्त पाकर अंकुरित हुआ है।

शंका—

आत्मा के संकल्प से रोग हट जाने की बात भी संदेहास्पद है क्योंकि शास्त्र में कहा है कि—'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि' कृत कर्मों का भोगे बिना छुटकारा नहीं होता। तथा प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि अनेक लोग रोग मिटाने के लिए चिल्लाते रहते हैं फिर भी रोग नहीं मिटते। किसी के विचार कर लेने मात्र से कृतकर्म का फल कैसे टल सकता है? कोई भी जीवात्मा अपने किये का फल भोगना नहीं चाहता। अतः दुःख के वक्त वह यही विचार करता रहता है कि रोग चला जाय। यदि चाहने मात्र से रोग चला जाता हो तब तो वैद्य-डाक्टर और दवाइयाँ व्यर्थ सिद्ध होंगी। इसलिए यह कहना कि सजग रहने पर या संकल्प करने पर रोग या वेदना हट जाते हैं कुछ अर्थ नहीं रखता।

समाधान—

किये हुए कर्म भोगे बिना नहीं छूटते और संकल्प बल से

कृतकर्म छूट जाते हैं ये दोनों बातें अपने २ स्थान पर ठीक हैं। यदि कहा जाय कि रोने चिल्लाने पर भी तो रोग नहीं मिटते फिर संकल्प की बात कहां ठीक रही ? तो इसका उत्तर यह है कि नींद मे चिल्लाने या बड़बड़ाने से क्या नतीजा निकलता है । नींद में मनुष्य कितना ही चिल्लाता या बड़बड़ाता रहे चोर उसकी परवाह नहीं करता। यह जानता है कि वह चिल्लाना व्यर्थ है। मोह निद्रा मे सोया हुआ व्यक्ति रोग मिटाने के लिए कितना ही प्रयत्न करे व्यर्थ है। यदि वह भाव निद्रा त्याग कर आत्म-जागृति प्राप्त करता है तो रोग मिटा सकता हैं इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं हैं। इसमें भोगावली और निकाचित कर्म का थोड़ा अपवाद है।

मोह निद्रा मे सोया हुआ मनुष्य रोग मिटाकर संसार की मौज-मजा करना चाहता है । अतः रोग मिटाने के लिए उसका चिल्लाना कुछ मूल्य नहीं रखता। यदि शरीर और आत्मा को भिन्न मानकर ही नहीं किन्तु अनुभव करके दृढ़तम संकल्प किया जाय तो रोग की शक्ति नहीं कि वह ठहर सके । आत्मिक तेज के सामने रोग के परमाणुओ की क्या ताकत जो ठहर सके। आत्मिक शान्ति के प्रभाव से शरीर मे चमत्कारिक परिवर्तन हो सकता है।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक के समक्ष यह बात रख रहे हैं कि राजन् ! मुझे विवेक हुआ मैंने मोहनिद्रा त्याग दी और नाथ बनने का सच्चा मार्ग अंगीकार किया। अधिकारी बनकर सच्ची लगन से काम किये बिना इष्ट सिद्धि नही हो सकती । अज्ञान अवस्था में वेदना मिटाने के लिए मै बहुत चिल्लाया। मैंने माता

पिता स्त्री भाई आदि से आशा रखी कि वे मेरा रोग मिटा देंगे। फिर वैद्यो और दवाइयो पर मदार बाँधा कि वे मेरा रोग मिटा देंगे। किन्तु यह सब निष्फल प्रयत्न रहा। जब अधिकारी बनकर दृढ़ संकल्प से मैंने रोग मिटाने का प्रयत्न किया, वह मिट गया। मैंने रात्रि मे निश्चय किया कि मुझे 'खंतो दंतो निरारंभो' बनना है। रोग! तू चला जा। क्षण भर के लिए भी मत ठहर। मैं क्षमाशील, इन्द्रियविजेता और अहिंसक बनना चहताहूँ अतः मेरे मार्ग में बाधक होकर रोग तू अंतराय मत कर। मेरे निश्चय से आत्मा मे कुछ ऐसा चमत्कार पूर्ण प्रभाव प्रकट हुआ कि सचमुच रोग मिट गया।

अनाथी मुनि ने रोग मिटाने के वक्त यह विचार किया कि मैं क्षमाशील होकर मुनि बनना चाहता हूँ। किन्तु यह विचार नहीं किया कि यदि मेरा रोग मिट जायगा तो मैं स्त्री के साथ आनन्दोपभोग करूंगा या अमुक काम अधूरा पड़ा है उसे पूरा करूंगा। उन्होंने यही भावना की कि यदि एक बार रोग मुक्त हो जाऊँ तो अनाथता के जितने कारण है उनको सर्वथा दूर कर दूं। जिस पराधीनता के कारण बार २ ये रोग मुझे सताते हैं उसका मूलोच्छेद कर डालूं। असली रोग तो पर वस्तु को स्ववस्तु समझना है। जो शरीर और धन सम्पत्ति मेरे नहीं है उन को अपना समझने की भूल कर रहा हूँ। रोग की जड़ यहीं है।

मित्रो! अनाथी मुनि नाथ बनने की कला समझ गये। किन्तु आप लोग अपने विषय मे थोड़ा विचार करो। मैं यह नहीं कहता कि आज ही घर बार और कुटुम्ब परिवार त्याग कर

आप उन मुनि की तरह दीक्षा अँगीकार कर लो। यह तो अपनी अपनी शक्ति की वात है। कोई तत्काल दीक्षा अंगीकार करे तो मनाही नहीं है। मैं यह देख कर प्रसन्न होऊँगा। मेरे कहने का सारांश यह है कि इस तत्त्व को समझ कर हृदय में स्थान दो। भक्त लोग इस तत्त्व को समझते हैं अतः कहते हैं:—

जलचर वृन्द जाल अन्तर्गत, होत सिमिट एक पासा।
एकहि एक ात परस्पर, नहिं देखत निज नासा॥
माधवजू मो सम मंद न कोऊ।
यद्यपि मीन पतंग हीन मति मोहित न पूजे ोऊ।
महामोह सरिता अपार में संतत फियौं बह्योऊ ॥माधव०॥
श्री प्रभु चरण कमल नौका तजि फिर २ फेन गह्यो॥माधव,॥

भक्त कहते हैं कि हे भगवन्! हम व्यर्थ दूसरों को दोष देते हैं। हम निष्कारण यह कहते है कि रोग, दुःख, नरक या कर्म हमें सताते हैं। यह तो सब हमारी मूर्खता का फल है। जिस प्रकार मछली वंसी में लगे माँस को निगल कर अपना गला फंसा लेती है और पतंग दीपक पर गिर कर अपना विनाश करता है उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य अपने को भोगो मे फंसा कर अपनी आत्मा का अहित करते हैं। मछली और पतंग को यदि यह ज्ञान हो कि मांस के लालच या दीपक के प्रकाश मे हमारा विनाश हो जायगा तो वे ऐसा लालच जान बूझ कर नहीं करते। किन्तु मनुष्य इन से भी गया-वीता है जो ज्ञानियो के मुखारविन्द से या शास्त्र वचन से यह जानते हुए भी कि भोगो से आत्मा का पतन होता है, भोगो में लिप्त रहता है।

रूचिररूप आहार बस उन्ह पावक न जान्यो ।
देखत विपति विषय न तजत हौं ताते अधिक अयान्यो ॥माधव॥

मछलो को यदि ज्ञान हो कि इस मांस के भीतर लोहे का कांटा है जिसे खाने से मेरा गला फंस जायगा और पतंग को यह भान हो कि यह आग है तो वे कभी न फंसते। वे वेचारे सुन्दर आहार और सुन्दर रूप के लोभ से फंस जाते हैं। किन्तु मनुष्य कितना अज्ञानी है जो जानते हुए भी विपयो में फंस जाता है।

अनाथी मुनि कहते हैं-मैं अज्ञानवश अनादिकाल से दुःख भोग रहा था। मैं यह जानता हुआ भी कि विपयो का सेवन करने से दुःख उत्पन्न होते है फिर भी विपयो का त्याग नहीं करता था और विशेप उनमें गिरता था। किन्तु जव इस पिछली वेदना के वक्त मुझे सच्चा विवेक उत्पन्न हुआ है मैं चेत गया। इसके पहले महापुरुपो द्वारा संसार समुद्र से पार पहुँचानी वाली नौका लाकर मेरे सामने खड़ी की गई थी किन्तु मै उस पर सवार न हुआ। मै विपयो के कीचड़ में फंसा रहा। प्रभु रूप नौका का सहारा न पकड़ कर धन जन और कुटुम्व परिवार रूप फेन का सहारा लेकर दुःख मिटाने की व्यर्थ चेष्टा करता था। अतः राजन्! मेरे कथन पर से विचार कर कि जिनको तू अपना मानता है उन में से कौन २ तेरा रक्षण कर सकते है? कौन तेरा दुःख छुड़ा सकते हैं यह सोच।

अनाथी मुनि का कथन सुनकर राजा श्रेणिक यह बात समझ गया कि वस्तुतः मै अनाथ हूँ और जिनको मै अपना सहायक मानता हूँ वे मेरी और अधिक अनाथता बढ़ाने वाले है। राजा

श्रेणिक साधु व्रत अंगीकार न कर सका मगर शनैः२ उसने अपना विकास किया। जो कुछ समझ कर उसने स्वीकार किया उससे पीछा कदम नहीं हटाया। ग्रंथकारो का कथन है कि अनाथी मुनि के उपदेश से उसको क्षायिक समकित उत्पन्न हो गया। एक ग्रंथ में यह बात भी उल्लिखित है कि नाथ अनाथ का भेद जान लेने पर उसको दृढ़ श्रद्धान हो गया।

श्रेणिक राजा की धर्मश्रद्धा इतनी मजबूत थी कि एक बार देव सभा में स्वयं इन्द्र महाराज ने उसकी श्रद्धा की प्रशंसा की। सभा में सब प्रकार के व्यक्ति होते हैं। इन्द्र द्वारा राजा श्रेणिक की की गई प्रशंसा सुनकर एक देव से न रहा गया। वह सोचने लगा कि हम देवों के मुकाबले में मनुष्य क्या चीज है ? हम वैक्रिय शरीर धारी हैं और मनुष्य औदारिक शरीर धारी। मैं राजा श्रेणिक को धर्मश्रद्धा से डिगा सकता हूँ। यह सोच कर एक दिन अनुकूल अवसर देख कर उसने जैन साध्वी का रूप बनाया। साधारण साध्वी का रूप न बनाया मगर गर्भवती साध्वी का रूप बनाया। जिसका पेट बढ़ा हुआ था। ऐसा रूप बनाकर बाजार में किसी पंसारी की दूकान पर सोठ पिपलामूल आदि वस्तुएँ खरीदने लगा। इधर राजा श्रेणिक की बाजार में सवारी निकली। राजा के मुंह लगे मसखरे लोगो ने कहा कि महाराज ! जरा इधर नजर करिये, आपकी गुराणी जी यह क्या खरीद रही हैं ! राजा ने उस साध्वी को अपने पास बुलाकर पूछा कि दुर्भागिनी यह क्या किया ? उसने उत्तर दिया, महाराज आप अपने रास्ते जाइये। आप इन बातों पर कहां २ ध्यान देंगे। संसार मे अनेक बातें होती रहती हैं। जवानी के जोश में

काम विकार पर काबू रखना बड़ा कठिन होता है। जवानी दीवानी मे ऐसा बनाव बन जाता है,।

राजा ने उस साध्वी से कहा कि तू इस तरह धर्म को कलंकित मत कर। मेरे राज महल में चली चल वहां एकान्त में रहना। किन्तु साध्वी ने उत्तर दिया कि राजन्! इस तरह तू किस २ को रखेगा। भगवान् महावीर के शासन में छत्तीस हजार साध्वियां हैं उन मे बहुतेरी ऐसी ही है। छोटी २ उम्र में दीक्षा ले लेने से जवानी में ऐसे काण्ड बन जाते हैं। तू किस २ को राज-महल में स्थान देगा।

साध्वी का कथन सुनकर राजा सोचने लगा कि यह महावीर की साध्वियो पर तथा स्वयं महावीर पर कलंक लगाती है। यह मेरे मन से महावीर और उनके साधु साध्वियो के विषय में शंका उत्पन्न करना चाहती है। यदि शंका मेरे मन मे घर कर गई तो भविष्य के लिए यह अच्छी बात न होगी। भगवान् महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी है उनके यहां ऐसी साध्वी नहीं रह सकती। मैं उन के ज्ञान से ही किसी को साध्वी मानता हूँ।

राजाने उस साध्वी को डांट कर कहा कि मै तेरे दुराचार से उतना नाराज नही हूँ जितना भगवान् महावीर और उनकी साध्वियों पर कलंक लगाने से हूँ। राजा की डाट से देव कांप गया।

राजा आगे बढ़ा। आगे क्या देखता है कि एक साधु कंधे पर मछली पकड़ने का जाल डालकर हाथ मे मछली रखने का पिटारा लिए हुए इस तरह दबकर जा रहा है कि कोई उसे देख न

सके। साथ वाले लोगों ने राजा से कहा कि महाराज ! गुराणी जी को तो आपने देख लिया अब थोड़ा उधर गुरुजी को भी देख लीजिये। वे दुबके हुए कंधे पर जाल डाले हुए चले जा रहे है। राजा ने उस साधु को समीप बुला कर पूछा कि यह क्या दशा है ? साधु ने कहा कि महाराज ! साधु का भेष ग्रहण कर लेने से भावना नहीं बदल जाती। हम क्षत्रिय हैं अतः पूर्व अभ्यस्त मांस खाने की आदत कैसे छूट सकती है ? हम सदा ऐसा किया करते हैं। तेरे ध्यान मे यह बात आज आई है। राजा ने कहा, यदि तुम अपनी आदत नही छोड़ सकते तो मेरे राज्य मे आ जाओ मैं तुम को यथेष्ट खाद्य वस्तुएँ दूंगा। साधु बोला कि राजन् ! भगवान् महावीर के शिष्यों में अनेक क्षत्रिय हैं वे सब ऐसा किया करते हैं तुम किस २ को अपने यहां रखोगे ?

यह सुन कर राजा कुपित हो गया। उसने कहा कि साधु ! तू तेरी निबेड़। दूसरो की बात क्यों करता है ? दूसरो पर कलंक क्यों लगाता है ? दुष्ट ! धर्म पर कलंक लगाकर पाप क्यो करता है। मैं महावीर की बताई पहचान के अनुसार साधुओ को मानता हूँ। कोई भी साधु तेरे जैसा हो नहीं सकता।

अंत में देव हार गया। उसने अपना असली रूप प्रकट कर के कहा कि धन्य है आपको और आपकी धर्म श्रद्धा को ! इन्द्र ने आप की जैसी प्रशंसा की है, आप वैसे ही हैं। आपकी धर्म पर दृढ़ता ने मेरा सुधार कर दिया। इन्द्र की बात मैंने नहीं मानी किन्तु आपकी दृढ़ता ने मनवा दी।

कहने का मतलब यह है कि राजा श्रेणिक की ऐसी दृढ़ श्रद्धा थी। यह अनाथी मुनि के उपदेश श्रवण का फल था। जैन

धर्म पर श्रद्धा करने का मतलब है निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा रखना। प्रवचन प्रतिपादित बातों को आचरण में ला सकना या न ला सकना यह तो आत्मा के सामर्थ्य पर अवलम्बित है किन्तु श्रद्धा और तत्त्व जिज्ञासा में कमी न रहनी चाहिये। तत्त्वों को समझ कर यथाशक्ति सत् संकल्प करना चाहिए। सत्संकल्प से रोग निवारण किस प्रकार होता है यह बात आगे और बताई जायगी। यह निर्विवाद बात है कि स्वर्ग का नरक मनुष्य के संकल्प का परिणाम है। दुर्गुण या गुण भी संकल्प के अनुसार होते है। अतः अपना संकल्प सुंदर रखना चाहिये।

सुदर्शन—चरित्र—

संकल्प अभया रानी ने भी कर रखा है और सुदर्शन ने भी। किन्तु दोनो मे जमीन आसमान जितना फर्क है। एक का आसुरी संकल्प है और दूसरे का दैवी। मानो देवासुर संग्राम है। हम यह देखें कि किसकी विजय होती है।

बोले नहीं जब सेठ रानी ने लिया नेत्र चढ़ाय।
नयन बाण को मार खींचकर पाय घुंघर घमकाय ॥रे धन०॥
पहना शील सनाह सेठ ने धीरज मन में ठाय।
ज्ञान खड्ग से छेदे बाण को रानी गई घबराय ॥रे धन०॥

रानी ने मीठे वचनो के द्वारा सेठ को अपने जाल में फंसाना चाहा किन्तु उसका यह प्रयत्न असफल रहा। सेठ के विवेक के सामने उसका जाल न टिक सका।

सेठ मन में विचार कर रहे थे कि इसने मेरे साथ जन्म भर स्नेह सम्बन्ध रखने की बात कही है। किन्तु यही प्रतिज्ञा एक बार राजा दधिवाहन के साथ भी यह कर चुकी है। और उसका पालन न कर के मेरे साथ स्नेह जोड़ना चाहती है। जब वह पहली प्रतिज्ञा नहीं पालती है तो दूसरी प्रतिज्ञा क्या पालेगी ?

विवाह एक पवित्र बंधन है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे को इस प्रतिज्ञा मे बांध लेते हैं कि हम एक दूसरे को छोड़ कर अन्य स्त्री पुरुष को भाई बहन समझेंगे। अमर्यादित वासना बुद्धि मर्यादित बन जाती है। इस बात को छोटी उम्र के बालक बालिका नही समझ सकते। अतः शास्त्रकारो ने बताया है कि जिनके सोते हुए सात अंग जागृत हो गये हो तथा द्रव्य और भाव से जिनकी जोड़ी मिलती हो, उनका लग्न सम्बन्ध हो सकता है। इससे पूर्व लग्न सम्बन्ध करना भयंकर भूल है। जिस पवित्र प्रतिज्ञा में वर कन्या आवद्ध होना चाहते है वह छोटी उम्र मे समझी नहीं जा सकती।

लग्न के प्रसंग पर जाति के लोगो को क्यों बुलाया जाता है ? क्या इस बात पर आपने कभी विचार किया है ? वस्तुतः लग्न और संकल्प की साक्षी के लिए जाति बन्धु निमंत्रित किये जाते है। आज तो जाति वालो को मिष्टान्न खिलादो कि लग्न हो गया। अच्छा भोजन कराया जाय तो अच्छा लग्न जाना जायगा और कुछ कसर रह गई तो बुरा लग्न गिना जायगा। भोजन पर लग्न का भार माना जाने लगा है। मुकदमो मे पंचो की साक्षी प्रमाण भूत मानी जाती है। किन्तु जो पंच खाने मे ही रह गये वे क्या साक्षी देंगे। पूर्वकाल मे लोग इतने प्रामाणिक होते थे कि जिन

वर कन्या की जोड़ी योग्य होती उन्हीं के विवाह में वे शामिल होते थे। वे अपनी जिम्मेवारी महसूस करते थे।

विवाह के वक्त की गई प्रतिज्ञा को इतनी दृढ़ता से पालना चाहिए कि देवता आकर डिगाने लगे तब भी नहीं डिगना चाहिए।

सुदर्शन मनोरमा के साथ विवाह के प्रसंग पर की गई प्रतिज्ञा को याद करता है। मैंने मनोरमा के साथ यह प्रतिज्ञा की है कि उसके सिवा किसी स्त्री से सम्बन्ध न जोडूंगा। अब यदि मैं इस रानी से विषय सम्बन्ध जोड़ता हूँ तो अपनी स्त्री के साथ विश्वासघात होता है। विश्वासघात महा पाप है। दूसरी बात दधिवाहन की अपनाई हुई इस रानी को मैं अपनाऊँ तो जूठन खाने के बराबर होगा। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से सोचकर सुदर्शन ब्रह्मचर्यव्रत को अखंडित रखने के निर्णय पर ही पहुंचे। उनके एक रोम में भी रानी के वचनों से ढिलाई नहीं आई।

सुदर्शन को मौन देखकर अभया विचारने लगी कि सचमुच यह पुतला ही है। मेरे द्वारा इतना अनुनय विनय करने पर भी यह मौन बैठा हुआ है। चाहे यह जड़ बुद्धि हो किन्तु मुझे साम दाम दण्ड और भेद नीति में से किसी के द्वारा इसे काबू में लाना है। मेरी साम नीति सफल नहीं हुई। इसलिए अब भय दिखाकर काम निकालना चाहिये।

यह सोचकर वह आंखे चढ़ाकर पैर पटक कर पैरों के नूपुर की आवाज करती हुई कहने लगी कि सेठ! मैंने इतना अनुनय किया मगर तुमने उसे सुना अनसुना कर दिया। यह न समझो कि ये शब्द किसी साधारण स्त्री के है। ये शब्द शेरनी के है। सिंहनी के शब्द व्यर्थ नहीं होते।

रानी इस प्रकार पैर पटकती हुई गुस्से में भी उसे स्वीकार कर लेने की प्रार्थना कर रही थी। ऐसे अवसर पर किसी पुरुष का मन स्थिर रहना कितना कठिन होता है, यह कोई अनुभवी ही समझ सकता है। ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों में कठिन है। इस पर दृढ़ रहना तलवार की धार पर चलने के समान है। शास्त्रकार ने कहा है—

देव-दाणव-गन्धव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा।
बंभयारिं नमंसन्ति दुक्करं ते करन्ति णं॥

ऐसे प्रसंग पर देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस और किन्नर भी हार खा जाते हैं। और इसीलिए शास्त्रकार ने कहा है कि ब्रह्मचारी पुरुष को देवादि भी नमन करते हैं क्योंकि वह दुष्कर व्रत का पालन करता है।

कई बार देखा गया है कि लोहे के बाण सहन करने वाले मिल जाते हैं। परन्तु वचन बाण सहन करने वाले विरले होते हैं। ज्ञानीजन गाली को प्रसाद मान कर पचा जाते हैं। ज्ञानी पुरुष असत्य को सत्य से काटकर सच्ची वीरता हासिल करते हैं। गाली से सत्य की खोज करने की बात नीचे के उदाहरण से बताता हूँ।

एक अविनीत पुत्र अपने पिता को गालियां दे रहा था। उसे गालियां देते देख एक तटस्थ व्यक्ति कहने लगा कि भले आदमी! अपने पिता को क्या गालियां देता है। इनका तेरे पर महान् उपकार हैं। यह सुनकर पिता बोला कि भाई! इसको आप क्या कह रहे हैं; जो कुछ कहना हो मुझ से कहो। यह लड़का मुझ को गालियां दे रहा है वह मेरे हाड़ो को दे रहा है या आत्मा को? यदि हाड़ो को दे रहा है तब बुरा मानने की क्या बात है? एक दिन हाड़ो को यह जला आयेगा। गाली बड़ी है या हाड़ों को

जला देना। और यदि मेरी आत्मा को गाली दे रहा है तो यह व्यर्थ प्रयत्न है। क्योंकि आत्मा को गाली लगती नहीं है।

पिता के मुख से इस प्रकार का ज्ञान पूर्ण विवेचन सुनकर पुत्र शर्मिन्दा हो गया और अपनी उद्धतता के लिए क्षमा मांगने लगा। यह है ज्ञानियों का मार्ग ! गाली मे से सार निकाल लिया किन्तु ज्ञान मार्ग को अपनाना बड़ा कठिन है। कोई धीरवीर और क्षमा शील पुरुष ही इस मार्ग पर चल सकते हैं।

अभया के वचन रूपी बाण भी बड़े तीखे हैं। किन्तु सुदर्शन उन बाणो को ज्ञान की तलवार से काटता जाता था। एक भी बाण का असर अपने पर न होने दिया।

मित्रो ! आप लोग भी सोचिये कि आप वचन बाणों को सहन कर सकते है या नहीं। यदि नहीं कर सकते तो दूसरों को वैसे शब्द मत कहिये जिनसे उनका हृदय छिल जाता हो। कठोर शब्द कहने से सामने वाले की आत्मा पीड़ित होती है। और जिसको कठोर शब्द कहे जाते है उसके साथ वैर का सम्बन्ध बढ़ता है।

वैरानुबंधीनि महाभयानि

कठोर शब्द वैर का अनुबंध करते है और बड़े भयकारी होते है। अतः किसी को अपशब्द या गाली देकर वैर न बांधो।

क्षमावीर सुदर्शन अभया के कठोर शब्द सुनकर भी निश्चल आसन से बैठे है। उनके मन मे भी किसी प्रकार की हलचल नहीं है।

राजकोट,
ता० ५-९-३६ }

ने पृथ्वी के समान क्षमा ी हो

र नाथ विनाशी शिव ख लीधो ।

।—

परमात्मा की प्रार्थना से किस मार्ग को प्राप्त किया जा सकता है और उसके द्वारा किस स्थिति तक पहुंचा जा सकता है यह बात प्रार्थना करने वाले भक्त ने प्रार्थना की कड़ियों में स्पष्ट बता दी है। किन्तु उनकी बनाई हुई कड़ियों को गा देने मात्र से हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं हो जाता। भक्तों ने हमारा मार्ग दर्शन करने के लिए पद बनाये हैं किन्तु उनके अनुसार आचरण कर के उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलना हमारा काम है। हम उस पर चलेंगे तब लक्ष्य सिद्ध होगा। किसी मार्ग दर्शक के इतना बता देने पर कि अमुक नगर का रास्ता उधर हो कर गया है हमारे चले बिना, उस तक कैसे पहुँचा जा सकता है? चलना तो हमें पड़ेगा। मार्ग बताने वाले का बड़ा उपकार है कि उसने हमको सीधा मार्ग बता दिया अन्यथा हम इधर उधर भटकते रहते। ज्ञानियों ने प्रभु का पथ बता दिया है और उस पर चलने के लिए कहते हैं कि:—

भज चेतन तू रहनाथ ने ते- प्रभु त्रि वन राया ।

यह मार्ग दर्शन कराया है। भक्त अपनी आत्मा से कहता है कि हे चेतन! तू भगवान् का भजन कर। भक्त दूसरों को उप-

देश नहीं देते किन्तु स्वयं आचरण कर के उसके द्वारा लोगो को सन्मार्ग पर लगाते है। भक्त कहता है कि हे मेरे चेतन ! जब कि संसार के सब द्रव्य अपना २ कार्य करने मे संलग्न हैं तब तू क्यों सुस्त बैठा है ! तू भी अपने चैतन्य धर्म के अनुसार अपने काम मे लग जा। चैतन्य का जो धर्म है उस पर चलना ही चैतन्य का मार्ग पर लग जाना है। चैतन्य को अपने धर्म पर लगाने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है।

यदि आत्मा में चैतन्य शक्ति न होती तो उसे धर्म मार्ग पर लगने के लिए न कहा जाता। ज्ञानियो ने आत्मा में चैतन्य के दर्शन किये है अतः कहते है कि अयि आत्मा ! तू भूल क्यों कर रहा है, अपने मार्ग पर क्यों नहीं चलता ? जान बूझ कर अपने पैरो पर कुल्हाड़ा क्यो मार रहा है। चेत और प्रभु भजन कर। चैतन्य का धर्म ज्ञान दर्शन चारित्र सुख आदि हैं। उस को प्राप्त कर। पर पदार्थ मे आत्म-बुद्धि त्याग।

आप कहेंगे कि परमात्मा का भजन करना अच्छा है किन्तु उसमें कठिनाई जान पड़ती है। किन्तु यह केवल मन का भ्रम मात्र है। पृथ्वी का धर्म स्थिर रहना है। यह बात दूसरी है कि कभी भूकंप आदि के निमित्त से वह कांप जाती है किन्तु उसका असली स्वभाव स्थिर रहना है। जल का स्वभाव शीत रहना और अग्नि का उष्ण रहना है। आकाश का स्वभाव अवकाश देना है। और वायु का स्वभाव चलते रहना या जीवन प्रदान करना है। ये पांचो भूत अपना अपना कार्य करते रहते हैं, कभी अपना स्वभाव नही छोड़ते। ये अपना २ कार्य करते हैं इसलिए संसार भी चल रहा है। यदि पृथ्वी चलायमान हो जावे

तो कितना गजब हो जाता है। वायु चलना बंद कर दे तो एक क्षण के लिए जिन्दा रहना भी हमारे लिए दूभर हो जाय। इन अनर्थों से बचने के लिए मनुष्य कामना करते हैं कि ये पांच भूत अपने स्वाभावानुसार कार्य करते रहे। दुखः इस बात का है कि मनुष्य अन्य सारी सृष्टि से तो स्व-स्व स्वभावानुसार कार्य करते रहने की इच्छा रखता है किन्तु स्वयं अपना धर्म पालन करना नहीं चाहता। यह कैसी विचित्रता है ?

ज्ञानी जन कहते है कि ऐ मनुष्यो ! तुम्हारी चंचलता से यह सारी सृष्टि चंचल है और तुम्हारी स्थिरता से स्थिर है। हमारी चंचलता से सृष्टि चंचल और स्थिर किस प्रकार है यह बात मैं अपने अनुभव से बताता हूँ।

बचपन में जब बादल हुआ करते मैं भी अन्य बच्चो के साथ चक्कर लगाया करता था। चक्कर लगाते लगाते इतने चक्कर लगाते कि नीचे गिर पड़ते। उस समय ऐसा मालूम होता कि यह सारी पृथ्वी चक्कर लगा रही है। अब इस अनुभव पर विचार करना चाहिये कि वस्तुतः पृथ्वी चक्कर [illegible]ाती थी या मैं स्वयं चक्कर पर चढ़ा हुआ था। आप लोग रेल में बैठ कर इधर उधर गये हैं। रेल मे से बाहर देखने पर ऐसा मालूम होता है जैसे वृक्ष, मकान आदि दौड़ लगा रहे हो। किन्तु यह बात सच नही है। दौड़ती हुई रेल का सहारा लेने से बाहर के पदार्थ दौड़ते हुए मालूम होते हैं।

इस प्रकार आत्मा मे चँचलता होने से संसार के पदार्थ चंचल दिखाई देते हैं। आत्मा स्थिर हो तो संसार भी स्थिर हो जाये।

स्व उपयोग सरूप चिदानंद जिनवर ने तू एक।
द्वैत अविद्या विभ्रम मेटो वाधे शुद्ध विवेक॥

वस्तु स्वच्छ है। निर्मल है। किन्तु उस पर कर्म का स्तर जमा हुआ है। उस कर्मस्तर के कारण ऐसा मालूम देता है मानो सारा संसार चंचल है। कर्म का स्तर हटाकर देखा जाय तो ज्ञात होगा कि आत्मा परमात्मा ही है। आत्मा को स्थिर किस प्रकार करना चाहिये यह बात आपके अनुभव पर से बताता हूं। वस्तु बहुत समीप और निज अनुभव की है। किन्तु भूल से अनुभव की हुई बात से लाभ नहीं उठाया जा रहा है। मै जो बात कहना चाहता हूँ उससे आपके जीवन का गहरा सम्बन्ध है।

आप प्रतिदिन रात को शयन करते हैं। यदि किसी दिन रात को निद्रा न आये तो कितनी बेचैनी का अनुभव होता है। नींद लाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। जीवन के लिए निद्रा परम आवश्यक वस्तु है। निद्रा के दो भेद हैं, एक सुषुप्ति और दूसरी स्वप्नावस्था। निद्रा मे सुषुप्ति अवस्था अधिक आवश्यक है। यदि किसी को रात भर स्वप्न ही आते रहे और सुषुप्ति न आवे तो जीवन खराब हो जाता है। कई प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं। सुषुप्ति अवस्था मे इन्द्रियो के साथ मन भी सो जाता है। केवल आत्मा जागता रहता है। ऐसी निद्रा से उठे हुए किसी मनुष्य से पूछा जावे कि तुम क्या करते थे तो वह यह उत्तर देगा कि आनन्द से सोकर उठा हूँ। उस वक्त उसको क्या आनन्द था जब कि वह गाढ़ निद्रा मे डूबा हुआ था। क्या उस वक्त कुछ खाना पीना या अन्य विनोद की सामग्री उपस्थित थी! कुछ न था। केवल आत्मा अपने स्थिर स्वभाव मे लीन था। यही

आनन्द था। सुषुप्ति अवस्था में भी पूर्व के संस्कार और कर्म आत्मा में लगे रहते हैं अतः आनन्द में कसर रहती है। किन्तु यदि आत्मा सर्वथा प्रकार से कर्म मल से रहित हो जाय तो तब जो अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है वह कुछ और ही है। ऐसा स्थायी आनन्द चैतन्य में विद्यमान है। यह चेतन वास्तविक धर्म है। इस धर्म को प्रकट करने के लिए सावधान होकर प्रयत्न करना चाहिये।

यह आनन्द कैसे प्रकट किया जा सकता है और चैतन्य अपने धर्म से किस प्रकार लग सकता है यह बात अनाथी मुनि के चरित्र से बताता हूँ।

सूत्र

अनाथी मुनि का यह अध्ययनन मालूम कितने सोए हुए चैतन्य में जागृति प्रदान करने वाला सिद्ध होगा। इस अध्ययन से कइयों ने आत्म-जागृति साधी है और कई भविष्य में साधेंगे।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को समझा रहे हैं कि मैंने वेदना के समय ऐसा संकल्प कर लिया कि यदि वेदना मिट गई तो मैं अनगार बन जाऊंगा, यह वेदना मुक्ति साधना में बाधक है अतः इस बाधक कारण के मिटने पर से विशेष आत्म धना कर सकूंगा। मुनि ने 'खंतो दंतो और निरारंभो' शब्दो का प्रयोग किया है। इन शब्दों का आपस में क्या सम्बन्ध है इसपर थोड़ा विचार किया जाता है।

खंतो–क्षमाशील, दंतो–इन्द्रिय दमन करने वाला, निरारंभो–ारंभ रहित होना।

क्षमाशील का अर्थ है सब कुछ सहन कर लेना। कैसी भी परिस्थिति हो और कैसा भी जुल्म गुजरता हो किन्तु अपना स्वरूप न त्यागना, सहन शील बने रहना क्षमा कहलाती है। शास्त्र में कहा है—

पुढवी समे मुणी हविज्जा

हे मुने ! तू पृथिवी के समान सर्वंसह बन। जिस प्रकार पृथ्वी गंदगी और स्वच्छ वस्तुएं दोनों को समान रूप से धारण करती है वैसे तू भी सुख और दुःख को समभाव से सहन कर। अनुकूल और प्रतिकूल साधनो में समता रख। कोई गाली दे या स्तुति करे दोनो अवस्थाओ मे आत्मा एक समान बना रहे ऐसा आचरण कर।

कोई पृथिवी की पूजा करते है और कोई उस पर अशुचि पदार्थ डालते है। कोई उस पर लात मारता है, कोई उसे खोदता है, और कोई उस पर छिड़काव करता है। किन्तु वह किसी के लिए अवगुण नहीं करती। पृथ्वी की स्थिरता और सहायता से संसार चल रहा है। मनुष्य पृथ्वी के उपकारो को याद नहीं करता किन्तु वह मनुष्य को नहीं भूलती। किसी पर प्रसन्न होना और किसी पर नाराज होना यह द्वन्द्व पृथ्वी को पसन्द नही है। अतः शास्त्रकार कहते है कि मुनि ! तुम पृथ्वी के समान सहनशील बनो।

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥

हे मुने ! लाभ और अलाभ मे, सुख और दुःख में, जीवन और मरण मे निन्दा और स्तुति मे तथा मान और अपमान मे

समान भाव रख। मन पर किसी बात का असर मत होने दे। यह सच्ची क्षमाशीलता है।

साधु के पास धन नहीं होता अतः लक्ष्मी की प्राप्ति और अप्राप्ति से होने वाले मनोमालिन्य का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता। शरीर निभाने के लिए लूखा-सूखा रोटी का टुकड़ा चाहिये सो मिल जाया करता है। यदि न मिले तब भी आनन्द मानना चाहिये। 'अच्छा हुआ आज रोटी न मिली। चलो सहज ही कर्म निर्जरा करने का अवसर हाथ लग गया' ऐसा सोच कर आनन्द मनाना चाहिए। महाजन लोग हानि-लाभ का विचार करके व्यापार करते हैं। किन्तु मुनियो! तुम व्यापारियों के समान हानि-लाभ के पचड़े में मत पड़ो। अपना कर्त्तव्य निभाये जाओ। हानि-लाभ के द्वन्द्व मे न पड़ कर दोनों अवस्थाओं में एकरस बने रहो। यह संयम का मूल लक्षण है। दस प्रकार के यति धर्मों में क्षमा प्रथम धर्म है।

क्षमा धारण करने के साथ-साथ सुख और दुःख में भी समान रहो। सुख दुः में इतने सम बन जाओ कि 'जीवन आस मरण भय विमुक्का' जीवन की आशा और मरण के भय से विप्रमुक्त हो जाओ। इसी प्रकार निन्दा और स्तुति में एकभाव रखो। कोई तुम्हारी प्रशंसा करेगा कि 'कितनी उत्कृष्ट चर्या का यह मुनि पालन कर रहा है और कोई तुम्हारी निन्दा करेगा कि यह कितना धर्मढोगी है।' दोनों प्रकार की बातें करने वाले लोग मिलेंगे। किन्तु तुम किसी की बात पर ध्यान मत दो। अपने मार्ग पर चलते रहो। गाली देने वाले का भी भला करो और भलाई की कामना करो।

धोबी यदि विना कुछ लिए कपड़े धो दे तो कौन नाराज होगा ? इसी प्रकार बेचारा निन्दक बिना कुछ लिए तुम्हारे दुर्गुणों को प्रकट करके तुम्हारी आत्मा के मेल को साफ करता है तो इसमे नाराजी की क्या बात है ? सच्चा साधु निंदक को अपना उपकारी मानता है।

जो महात्मा इस स्थिति का अनुभव करते हैं वे लाख लाख धन्य है।

मित्रो ! आप लोग श्रमणोपसक हैं और ये बहिने श्रमणोपासिकाएं हैं। भगवान ने आपको अरिहन्तोपासक न कह कर श्रमणोपासक कहा है इसमे कुछ रहस्य है। श्रमण में अरिहंत का भी समावेश हो जाता है। श्रमण का अर्थ होता है जो निशिदिन अपनी आत्मा को तपावे। आप श्रमणो के उपासक हैं । आप उनकी क्या उपासना-सेवा करते है। क्या उनके हाथ पैर दबाते है या उनका वजन उठाकर चलते है ? यह तो कर नही सकते । क्योकि साधुओ का ऐसा आचार नहीं है। वे आपकी ये सेवायें नही ग्रहण कर सकते। उनकी उपासना का अर्थ इतना ही है कि उनकी तरह आप लोग भी व्यापार में यदि हानि लाभ हो तो दुःखी मत होओ। अनुचित लालच में मत पड़ो । श्रमणों का आंशिक अनुगमन करो। क्या लोभ के वशीभूत होकर भूठ बोलना श्रमणोपासक का कर्त्तव्य है ? चार छ आनो के लिए असत्य बोल देना क्या श्रमणोपासक के लिए शोभनीय बात है ?

यहां के लिए मैंने सुना है कि किसी के मरने के बाद पीटनी करने का रिवाज है। अनेक स्त्रियां लाइन-बद्ध खड़ी हो जाती है और एक साथ मिल कर रोना तथा छाती कूटना

शुरु करती हैं। क्या यह बात जैन श्राविकाओं को शोभा देती है ? क्या उनके ऐसा करने से मरा हुआ व्यक्ति वापस लौटकर चला आता है ? जैन श्राविका को छाजने लेकर रोती हुई देखकर मेरे हृदय में क्या विचार होगा ? यह मेरी कमी है या बाइयों की ? मेरी श्राविकाएँ ऐसा करें यह मेरे लिए खेदजनक बात है। आप लोग को ऐसा रोना त्याग देना चाहिये। यदि एक दम इस रिवाज को न मिटा सकें तो धीरे २ आगे बढ़ना चाहिये। अमुक दिन बाद न रोएंगे ऐसा नियम करना चाहिये। इन बुरे रिवाजों से धर्म निन्दित होता है।

दूसरी बात यह है कि रोने के विषय में थोड़ा खयाल तो कीजिये। आप शरीर के लिए रोते हैं या आत्मा के लिए ? यदि शरीर के वास्ते रोया जाता है तब उसे जलाते क्यों हो ? शरीर आपके सामने रहता है उसको रोक क्यों नहीं रखते। और यदि आत्मा के लिए रोते हो तो इसका अर्थ हुआ कि आत्मा की अविनश्वरता के विषय में आपको विश्वास नहीं है। आत्मा अमर है। वह कभी नहीं मरता। सिर्फ चोले बदलता रहता है। यदि कहो कि श्वासोच्छ्वास के लिए रोते हैं तो आज तक रो कर किन २ ने पुनः श्वासोच्छ्वास चालू करवा लिया। ऐसी हालत में मरने पर रोना किसी के लिए लाभदायक नहीं है। आप श्रमणोपासकों को तो किसी की मृत्यु होने पर यह विचार आना चाहिये कि एक न एक दिन इस नश्वर शरीर को वश्य छोड़ना पड़ता है। अतः मैं इस उदाहरण को सामने रखकर अपना मरण सुधारूं। मैं पंडित मरण मरूं। ऐसी भावना करनी चाहिये। मयणरेहा ने अपने पति का मरण सुधारा था यह आप जानते

ही हैं। उसने अपने पति की धर्म सहायता की थी। किन्तु रोकर धर्म को कलंकित नहीं किया।

वोहरा कौम में किसी कुटुम्बी के मरने पर रोने का रिवाज नहीं है। रोना कूटना इनके मजहब के खिलाफ माना जाता है। ताजिये के वक्त ये लोग रोते हैं। किन्तु वह रोना हमामहुसैन के लिए है न कि किसी घर वाले के लिए। यदि आप लोग भी अपने किसी धर्म गुरु के लिए रोते हो तो वह दूसरी बात है। जो कि उनके लिए भी रोने की आवश्यक्ता नहीं है। किन्तु आप लोग अपने साथी के लिए रोते हो यह ठीक नहीं है। मयणरेखा के पेट में गर्भ था और बड़ी मुसीबत में फंसी हुई थी तब भी वह न रोई। इसलिए आज तक उसके गुण गाये जाते हैं। आप लोग रोना त्याग कर आर्त्तध्यान हटाकर धर्मध्यान स्वीकार करो। यदि राजकोट का श्री संघ न रोने का नियम बना लें तो काठियावाड़ के अन्य शहरों व गांवो में कुछ कहने का अवसर मिले।

मतलब कहने का यह है कि क्षमाशील या सहनशील होने से खुद का भी कल्याण होता है और जगत् का भी। अनाथीमुनि कहते हैं कि राजन् ! मैंने निश्चय कर लिया कि यदि एकबार मेरी यह वेदना मिट जाय तो मैं क्षमाशील बन जाऊंगा।

सत्संकल्प का असर जड़ सृष्टि पर भी पड़ता है। सत्संकल्प के प्रभाव से तलवार का घेरा फूल की तरह सरल बन जाता है। विष अमृत बन जाता है और अग्नि शीतल हो जाती है। मुनि कहते हैं कि मैंने पृथ्वी की तरह क्षमा धारण करने का संकल्प कर लिया। इन्द्रिय विजेता बन कर निरारंभी होकर

प्रव्रज्या अंगीकार करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। ज्यों ही मैंने यह संकल्प किया कि मुझे निद्रा आगई। मुझे कई दिनों से निद्रा न आई थी। निद्रा आने से रोग में शान्ति मानी जाती है। मेरे घर के लोग मुझे निद्रा आजाने से बड़े प्रसन्न हुए।

उनकी प्रसन्नता का कारण कुछ और ही था। पिता सोचते होंगे कि अब मेरा पुत्र अच्छा हो जायगा। अच्छा होकर घर के कार्य में मेरा मददगार बनेगा। माता सोचती होगी कि मेरा पुत्र अच्छा होकर मेरी वृद्धावस्था में सहायक होगा। भाई सोचते होंगे कि चलो बराबरी का भाई अच्छा होगया सो कभी काम आयेगा। बहिन अपने पीयर की आबादी और खुशाली से प्रसन्न थी। स्त्री भी न मालूम अपने मन मे क्या २ घाट घड़ रही थी। किन्तु मेरे मन मे कुछ दूसरी प्रकार की विचार धारा काम कर रही थी।

सुदर्शन-चरित्र

सुदर्शन सेठ एकांत स्थान में अभया के हाव भाव देख कर और उसकी चिकनी चुपड़ी बाते सुन कर भी अपने व्रत पर दृढ़ बने रहे। मानो उन्होंने शील की रक्षा करके सारे श्रावक समाज और साधु समाज की इज्जत रख ली है। ऐसे श्रावक के लिए ही हम लोग गरज कर कहते हैं कि—

धन सेठ सुदर्शन संयम पाली तारी आत्मा।
वर्षा ऋतुसम बनी भामिनी अम्बर पटल बनाय।
हुंकार की ध्वनि गाज सम तन दामिनी दमकाय। रे धन०।

अमोघधारा वचन बरसाती चाह भूमि भिंजाई।
मूंगसरिया सम सेठ सुदर्शन न सकी रानी भिगाई।रे धन.।

सुदर्शन को कोटि २ धन्य है जो शीलव्रत पर आरूढ़ रहा। डिगा नही। वह पौषधशाला को निरापद स्थान समझ कर धर्म आराधना कर रहा था। किन्तु पण्डिता ने उसका वह स्थान छुड़ा दिया और राज महल मे ला रखा। यहां साक्षात कामिनी बनी हुई रानी विघ्न कर रही है। कामवासना को उत्तेजना देने वाला राज प्रासाद और वर्षाऋतु बनी हुई रानी उपस्थित है। रानी के वस्त्र वर्षाऋतु के रंगीन बादलो के समान थे। जैसे बादल इधर उधर गति करते रहते है वैसे वे वस्त्र भी रानी द्वारा इधर उधर हिलाये जा रहे थे। वर्षा के बादलों मे जिस प्रकार बिजली चमकती है उसी प्रकार उन वस्त्रों मे रानी का गौर शरीर और आंखे चमक रही थी। उस समय रानी वर्षाऋतु बनी हुई थी और सुदर्शन के शरीर को काम के जल से भिगोने का प्रयत्न कर रही थी। बादलो में चमकने वाली बिजली के वक्त धैर्य रखा जा सकता है किन्तु रानी रूपी वर्षा की बिजली से देवो का भी धैर्य छूट जाता है तो मनुष्यो की क्या बात करे। रानी का अहंकार युक्त हुँकार मानो बादलो की गरज थी। रानी पानी की धारा के समान वचन रूपी धारा बरसा रही थी।

पानी का जोश कम नही होता है। वह पहाड़ो को फोड़कर नदियो के रूप में बह निकलता है। पानी की धारा बड़े २ पत्थरो को तोड़ देती है। जब पानी नदी के रूप मे पूर बन कर निकलता है तब कैसा विचित्र दृश्य बन जाता है। पानी के इस

वेग को कोई सहन भी कर सकता है किन्तु काम के वेग को सहन करना वड़ा कठिन काम है।

काम के वेग के सामने रथनेमी भी राजमती को एकान्त स्थान मे देख कर हिल गये थे। किन्तु सुदर्शन सेठ इस वेग को सहन कर गये। वे महान् पहाड़ के समान न थे किन्तु मूंगसलिया पत्थर के समान थे।

नन्दी सूत्र मे मूंगसलिया पत्थर और पुक्खलसमत्थाई मेघ की कथा है। मूंगसलिया पत्थर मूंग के दाने के बराबर होता है। कितना भी पानी बरसे वही नहीं भींगता। एक बार नारद ने मेघ से पूछा कि तेरे में क्या २ शक्ति है। मेघ ने उत्तर दिया कि मैं वड़े २ पहाड़ों को तोड़ सकता हूँ। तब नारद बोले कि मूंगसलिया पत्थर मुझसे कहता था कि मुझे भिगोने की किसी की ताकत नहीं है। क्या उसका यह अभिमान उचित है? मेघ बोला कि मै उस को भिगोकर उसका अभिमान ठंडा कर देता हूँ। मेरे सामने मूंग-सलिया क्या चीज है। नारद बोले यदि ऐसी वात है तब उसको भिगो न? मेघ सात दिन-रात विना नागा बरसता रहा किन्तु मूंगसलिया पत्थर न भिगा। बल्कि पानी से उस के आसपास का कचरा साफ हो गया जिससे और अधिक चमकने लगा। नारद मेघ से बोले कि यह पत्थर चमक दिखा कर तेरी हँसी कर रहा कि तेरे जैसे मैंने कई देखे हैं। मेघ! तू इसके सामने अपनी हार स्वीकार करले।

इस उदाहरण को जिस तरफ चाहो उस तरफ लागू कर सकते हो यहाँ तो सुदर्शन और रानी अभया हैं। सुदर्शन मूंग-

सलियाँ पत्थर के समान है और रानी सञ्वसमत्थाई मेघ के समान है। रानी की वर्षा का सुदर्शन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। सुदर्शन का एक रोम भी उसके वचन बाणों से न हिला। रानी विचार करने लगी कि हाय ! यह किसी तरह नहीं पसीजता है। अब मैं कपिला और पण्डिता के सामने मुंह कैसे दिखाऊँगी।

कई मनुष्य और कई साधु इसलिए अनर्थ कर डालते हैं कि ऐसा न करने से उनकी बात हल्की लगेगी। रावण ने इसी भय से अपना विनाश करवाया था।

अभया इसी भय के कारण दुःखी है कि वह अपनी सखी के सामने अपमानित होगी कि बस इतना भी न कर सकी ! डींगे तो बड़ी २ हांकी थी और कार्य के नाम पर कुछ नहीं किया। वह रह रह कर विचार कर रही है कि अब क्या उपाय काम में लाऊँ ? मेरी बुद्धि मे जितनी बाते थी सब अजमा ली। अब क्या करूँ ? यह तो पत्थर की मूर्ति के माफ़िक अडोल बैठा है। हाँ, एक अस्त्र और रह गया है। स्त्रियो का सब से बड़ा बल रोना है। उसका प्रयोग करके भी देख लूं। शायद इसका चित्त दयालु है और रोने से पिघल जाय।

करूणस्वर से रोवे कामिनी पूरो हमारी   ।श।
शरणागत मैं हुई तुम्हारे मानो मम अरदास ॥रे धन०॥
अवसर देख सेठ तब बोला सुनो सुनो बड़ मात।
पंच मात में तुम अग्रेसर तज दो खोटी बात ॥रे धन०॥

रानी अंतिम अ   का प्रयोग करने लगी। स्त्री का रुदन

सुनकर बड़े-बड़े पुरुष कांप उठते हैं। ऋषि मुनि भी विचलित हो जाते हैं। स्त्रियो को अकस्मात् रोना कैसे आ जाता है? क्षण भर में टप से आँसू कैसे निकल पड़ते हैं? इस बात को वे ही जानती हैं। रानी भी एक दम रोने लगी और सुदर्शन से कहने लगी कि मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ। मुझ पर दया करो। तुम दयाधर्मी हो, करुणासागर हो अतः मुझ पर भी करुणा करो। मैं आपसे प्रेम करने के लिए उस प्रकार तड़प रही हूँ जिस प्रकार पानी के बिना मछली तड़पती है। आप मुझ को शरण में लेकर मेरी रक्षा करो।

शास्त्र में जिन ऋषि जिनपा की कथा वर्णित है। जिनपाल रयणा देवी की मीठी मीठी बातों और प्रलोभनो से न डिगा किन्तु अंत मे उसका रुदन सुनकर चलायमान हो गया। वह उसके फंदे में फंस गया। उसकी कैसी दुर्दशा हुई है यह सब को मालूम है।

अभया का रोना सुनकर सुदर्शन सोचने लगा कि पुत्र माता के सामने रोते हुए देखे गये हैं किन्तु यह माता होकर पुत्र के समक्ष रुदन करती है यह विचित्र बात है। इसको किसी प्रकार संतुष्ट करना चाहिये। अभी तक इसके मन मे दूसरी भावना थी किन्तु अब भावना बदली मालूम देती है अतः इसके मन को सान्त्वना देनी चाहिये। मुझे यह दयाधर्मी कह रही है इसलिए मेरा कर्त्तव्य है कि इस पर दया करूं।

स्त्रियो के रुदन से लोग यहां तक कांप उठे कि उन्होंने अपने शास्त्र मे करुण रुदन करती हुई स्त्री की वासना पूर्ति

करने में पाप होने तक का विधान कर डाला है। किन्तु जैन शास्त्र सूत्रकृतांग सूत्र में मुनियों के लिए कहा गया है कि हे मुने! तेरे सामने कोई स्त्री चाहे किसी भी तरह का रुदन या विलाप करे किन्तु तू ब्रह्मचर्य से मत डिगना।

मुनि तो नहीं डिगते किन्तु उनका उपासक श्रावक सुदर्शन भी नहीं डिगता है। माता का रुदन सुनकर सुदर्शन उसको संतोष देता है। कौन ऐसा पुत्र होगा जिसका हृदय माता के रुदन से भी न पसीजे ? सुदर्शन रानी अभया से पूछता है कि बड़ी माता! आपको क्या दुःख है ?

सुदर्शन द्वारा माता शब्द से संबोधन सुनकर रानी विचार में पड़ गई। यह किसको माता कह रहा है ? यह अब तक तो कुछ बोला नहीं और बोला तो माता कहकर मुझे पुकार रहा है। मुझे यह विशेषण पसन्द नहीं है। रानी को माता विशेषण कब अच्छा लग सकता है ? इस वक्त इसके मन में शैतान का निवास है। वैसे स्त्रियों को माता शब्द से पुकारा जाना पसंद होता है। मगर कामवासना का उन पर भूत सवार हो जाता है तब वे अपनी मर्यादा भूल जाती है।

रानी को विचार में डूबी हुई देखकर सुदर्शन कहने लगा कि माताजी ! आप किस विचार मे निमग्न हैं ? कदाचित आप मुझको भूल सकती हैं किन्तु आपका पुत्र मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ। आप मेरी माता है। 'मांग् पालने' धातु से माता शब्द बनता है। मेरे एक नहीं किन्तु पांच माताएँ हैं।

श्रोताजनो ! आपकी भी पांच माताएं हैं या नहीं ? यदि हैं तो उनके प्रति आपका क्या कर्तव्य है यह सोचो ।

अभया इतनी उचटी हुई थी कि उसे माता शब्द से पुकारा जाना भी पसन्द नहीं आया । इस वक्त यह विशेषण उसे बड़ा बुरा लगा ।

धर्म का पालन एकांगी होता है । धर्म पालन के विषय में यह नियम लागू नहीं होता कि अमुक व्यक्ति ऐसा करे तब मैं भी ऐसा करूं । दूसरा व्यक्ति अपना धर्म निभाता है या नहीं निभाता है इस झंझट में न पड़ कर अपना क्या धर्म है, यह देखना चाहिये । मान लीजिये कि दो मनुष्यों में किसी बात को लेकर मनमुटाव हो गया है । अब प्रश्न खड़ा होता है कि पहले कौन क्षमा मांगे ? क्षमा मांगना या क्षमा करना धर्म है । दोनों व्यक्ति यदि यह सोचते रहें कि पहले क्षमा याचना कौन करे तब तो आपसी द्वेष या आंटी निकलना संभव नहीं है । किन्तु उन में से कोई एक यह विचार करे कि मैं अपना धर्म निभाऊँ, मुझे सामने वाले के धर्म पर विचार करने का क्या अधिकार है, मुझे मेरे कर्त्तव्य पर सोचने का अधिकार है मैं उससे क्षमा माँग लूं और आपसी मनोमालिन्य को साफ कर लूं । तब द्वेष धुल सकता है । जो व्यक्ति ऐसा करता है वह धर्म का पालन करता है । किन्तु जो दूसरों पर बात को अड़ा देते हैं वे धर्म मार्ग को नहीं पहचानते ।

सुदर्शन अपना कर्त्तव्य देख रहा है । वह यह नहीं सोचता कि रानी मुझे किस निगाह से देख रही है । वह यही सोचता है कि मुझे रानी को किस निगाह से से देखना चाहिये

धर्म का पालन आत्मसाक्षी से किया जाता है। जो आत्मसाक्षी से धर्म का पालन करता है उसे इन्द्र भी हिला नहीं सकते। दूसरे पाप करते हैं या धर्म करते हैं यह न देख कर हमें क्या करना चाहिये, यह देखो। दूसरा चाहे पाप भी करता हो, हमें धर्म करना चाहिये।

पांच माताएँ कौन २ सी है, यह बात आगे पर यथावसर बताई जायगी।

राजकोट,
ता० ६-६-२६ 



संकल्प शक्ति । शारीरिक प्रभाव

मल्ली जिन बाल-ब्रह्मचारी ।

र्थनाः—

परमात्मा की प्रार्थना करते हुए भक्त यह भावना करता है कि हे भगवन्! तेरी भक्ति मैं करना चाहता हूँ फिर भी शास्त्र में जैसी भक्ति बतलाई गई है वैसी भक्ति मैं क्यो नहीं कर पाता हूँ। उसमें विघ्न क्यो आते है? विघ्न उपस्थित होने से मैं इस नतीजे पर पहुंचता हूँ कि तेरी कृपा के बिना तेरी भक्ति भी शक्य नहीं है। तेरी भक्ति करते हुए क्या विघ्न आते हैं उसके सम्बन्ध में भक्तिसूत्र में कहा है।

सा न कामायमाना निरोधरूपत्वात्

प्रभुभक्ति करते हुए किसी भी बात की किंचित् भी कामना न होनी चाहिये। कामना भक्ति में विरोध पैदा करती है। जब मैं अपना हृदय टटोलता हूं तब उसमें असंख्य इच्छाएँ पाता हूँ। अतः हे परमात्मन्! मै तेरी शरण मे आया हूं कि तेरी कृपा होने पर मुझ से निष्काम भक्ति हो सकती है। यद्यपि कामनाएँ मुझे सतायेंगी किन्तु तेरे चरणों की शरण पकड़े रहने से वे मिट जायेंगी और मैं शास्त्रानुसार भक्ति कर सकूंगा।

हे भगवन् मल्लीनाथ! मैंने आपका चरित्र सुना है। छह कामान्ध राजा आपके साथ विवाह करने के लिए एक साथ

चढ़कर आये थे । आपने उनका तिरस्कार नहीं किया किन्तु प्रतिबोध देकर सन्मार्ग पर लगाया था । आप में उन राजाओं को परास्त करने की शक्ति थी । आप में सारी पृथ्वी को मेरु पर र कर उठा लेने की ताकत थी । आपके पिता को उन राजाओं पर क्रोध आगया था और इसलिए उन्होंने ससैन्य सामना भी किया था । किन्तु छह राजाओं की संगठित शक्ति के सामने वे न टिक सके और हार खा गये । फिर भी भगवन् ! आपको उन राजाओ पर गुस्सा न आया । आपने अपने पिता से कहा कि छह राजा चढ़ाई करके आये हैं इसमें क्या नवीनता है? वे मुझको कन्या समझते है अतः विवाह करने की इच्छा से चढ़कर आये हैं । आप उनसे कह दीजिये कि आपको मेरी कन्या मिलेगी ।

हे भगवन् ! आपके ऐसा कहने पर भी आपके पिता कुंभ राजा ने इस विषय मे किसी प्रकार का सन्देह नही किया । वे यह जानते थे कि आप महापुरुष है और जो कुछ कहते हैं वह उचित ही होगा । शास्त्र मे 'मल्ली रायबर कन्ना' प है । अर्थात् मल्लीनाथ एक राजा की कन्या थे । आपको राजकन्या मानते हुए भी आपके पिता ने आपका वचन नही टाला और छहों राजाओं को विवाह का आमंत्रण दे दिया । हम लोग मल्लीनाथ को सिद्ध बुद्ध और मुक्त मानते है अतः उनके वचनो पर किसी प्रकार का सन्देह नही करना चाहिये । छहो राजा आये और आपने उनको किस खूबी से समझाया यह कथा सर्वविदित है । भगवन् ! आपने उन राजाओ की वासनाएँ छुड़ाकर उनको आपरूप मे मिला लिया । ऐसे मल्लीनाथ भगवान् की शरण को छोड़कर हम लोग अन्य किसकी शरण ग्रहण करें । हमारी काम-

नाएँ भी आपकी भक्ति से मिट जायगी। आप हमारी कामना न मिटायेंगे तो और कौन मिटायेगा ? कवि आनन्दघन जी कहते हैं कि–

ये तुम शोभा सारी मल्लिजिन ! सेवक ी म अवगणिय।

हे भगवन् ! आपने उन छह राजाओं की भी अवगणना नहीं की जो आप से विवाह करने के लिए आपके पिता पर चढ़ाई करके आये थे। मैं आपका भक्त हूँ मेरी अवगणना कैसे करते हैं ! और क्या यह बात आपके लिए शोभाजनक है कि आपका एक भक्त दुःखी है। संसार में यह देखा जाता है कि ऋद्धिशाली स्वामी अपने सेवक का दारिद्रय दूर कर देता है। आप भी अनन्त चतुष्टय के धारक है अतः मुझ पर भी कुछ कृपा करिये नाथ ! आप अठारह दोषों से रहित है अतः मैंने आपका सेवक होना स्वीकार किया है। आपने आशा और तृष्णा का नाश कर दिया है अतः मैं आपका दास बना हूँ। आपने स्वयं अपनी आशा तृष्णा को मिटा दिया है तो क्या सेवक की आशा तृष्णा को न मिटायेगे। प्रभु ! मुझे केवल एक ही कामना है और वह है आशा-तृष्णा मिटाने की कामना। आपके सेवक की इच्छा पूरी न हो इसमें आपकी शोभा नहीं है।

सांसारिक पदार्थों की आशा रखकर भगवान की भक्ति करने वाले लोग भक्ति का स्वरूप नहीं समझते। संसार मे जो दुः या बुराई देखी जाती है वह आशा के कारण ही है। किसी को धन की, किसी को पुत्र की और किसी को कामिनी की आशा गी हुई है। यदि कोई साधु बन गया है तो उसे कीर्ति की

आशा लगी रहती है। किन्तु जब तक आशा लगी रहती है तब तक सत्य का आचरण करना तो दूर की बात है सत्य भाषण करना भी उसके लिए कठिन कार्य है।

एक ग्रंथ में पढ़ी हुई कथा के आधार से यह बात विशेष रूप से बताता हूँ।

अद्वैताचार्य नामक एक विद्वान थे। उनके पिता बंगाल के किसी राजा के गुरु थे। अद्वैताचार्य को यह विचार उत्पन्न हुआ कि जो बात सत्य हो उसे अवश्य प्रकट करना चाहिये। चाहे उसके लिए कोई मार भी क्यों न डाले। वहां का राजा शाक्त था। देवी का उपासक था। यह लगभग पंद्रह सौ सोलह सौ शके की बात है। उस वक्त देवी पूजा के नाम पर बहुत अधिक पशु वध होता था। पंडित लोग भी उस पशु-वध का समर्थन करते थे।

एक दिन राजा देवी की पूजा कर रहा था कि इतने में अद्वैताचार्य मन्दिर में आये और देवी को नमस्कार किये बिना ही देवी के सामने आकर बैठ गये। राजा को यह गुस्ताखी अच्छी न लगी। मेरे गुरु का पुत्र इस प्रकार मेरे सामने देवी का अपमान करता है! राजा ने अद्वैताचार्य से पूछा कि तुम्हारा मस्तिष्क ठिकाने सर है न? अद्वैताचार्य ने कहा कि मेरा मन स्थिर है। कहिये क्या बात है? राजा ने कहा कि माता को नमस्कार किये बिना कैसे बैठ गये? अद्वैताचार्य बोले कि यदि यह देवी माता है और सचमुच इसे माता होना ही चाहिये तो यह इन मूक पशुओं की बलि क्यों लेती है? पशु भी तो देवी के पुत्र

ही हैं। माता का काम पुत्रों का पालन-पोषण करना है। नाश: रना माता का काम नहीं है।

अद्वैताचार्य का कथन सुनकर राजा चुप हो गया। कुछ उत्तर न दे पाया। तब अद्वैताचार्य के पिता बोले कि पुत्र! तू धर्मभ्रष्ट होगया है। तुझे धर्म का कुछ पता नहीं है। माता भोग माँगती है, बलिदान मांगती है। पुत्र कुछ अजीब सा था। उसने कहा-पिताजी! यदि माता बलिदान मांगती है तो मेरी माता मेरा बलिदान क्यों नहीं मांगती? आपकी बात ठीक हो सकती है जब मेरी माता मेरा वध कर डाले। पिताजी! आप भय और लोभ के कारण ऐसी बात कर रहे है। पिता भी चुप हो गया।

कहने का भावार्थ यह है कि अद्वैताचार्य को किसी बात की कामना न थी अतः वे सत्य बात कह सके। किन्तु उनका पिता वैसा न कर सका। आप लोग आशा तृष्णा के भंवर जाल में फंसे हुए है अतः ऐसे देव की उपासना करते है जो स्वयं आशावान और तृष्णावान हैं। यदि आशा तृष्णा मिटानी है तो निरीह भगवान् मल्लिनाथ की शरण अंगीकार करिये। कामना रहित होकर भगवान की शरण अंगीकार करने से सर्व शक्ति प्राप्त होती है। अनाथी मुनि भी कामना रहित होने का प्रयत्न कर रहे है।

शास्त्र--

भगवती सूत्र में गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है कि हे भगवन्! जीव स्वयं का किया हुआ दु भोगता है या दूसरे का

किया हुआ भोगता है ? भगवान् ने उत्तर दिया कि गौतम ! जीव अपना किया हुआ दुःख भोगता है न कि दूसरे का किया हुआ। इस पर से समझना चाहिये कि 'सुख दुःख सब मेरा खुद का किया हुआ है। मैं कर्म को दोष देता हूँ किन्तु कर्म क्या करे ? कर्म भी तो मेरा ही किया हुआ है। कर्म को मैंने स्थान दे रखा है इसलिए ठहरा हुआ है। यदि मैं चाहूं तो कर्म को भी भगा सकता हूं।' इस प्रकार अनाथी मुनि राजा से कह रहे हैं कि मैंने आत्म-चिंतन कर के दुःख का मूल कारण ढूंढ निकाला। मैं समझ गया कि यदि दुःख मेरा किया हुआ है तो क्या सुख नहीं किया जा सकता ?

ज्ञान दो प्रकार से उत्पन्न होता है। एक स्वतः विचार करते २ या किसी घटना को देखकर और दूसरा किसी ज्ञानी से। अनाथी मुनि को किस प्रकार ज्ञान उत्पन्न हुआ इसका शास्त्र में कुछ जिक्र नहीं है। उनको स्वतः बोध हुआ हो या किसी विशिष्ट ज्ञानी के मुख से उपदेश श्रवण कर हुआ हो किन्तु यह निश्चित बात है कि उनको सुख दुःख का ज्ञान हो गया। आपको स्वतः ज्ञान पैदा न हो तो यह उपदेश आपके सामने है। इस पर मनन और चिंतन करने से आपको भी ज्ञान हो सकता है। यह उपदेश श्रवण कर आप भी अपना दुःख मिटाने का संकल्प करिये।

अनाथी मुनि राजा से कहते हैं कि हे राजन् ! मैंने दुःख मिटाने का दृढ़तम संकल्प किया कि तुरत मुझे निद्रा आ गई। निद्रा भी ऐसी आई कि मानो सब दिनों की कसर निकल गई। जैसे विवाह शादी की थकान के बाद कैसी गाढ़ निद्रा आती है वैसी निद्रा मुझे भी आगई। लोग समझ रहे थे कि मैं सो रहा

था किन्तु मै दुःख को सदा के लिए विदा कर रहा था। मेरे दुःख की वह अन्तिम रात थी।

यदि मनुष्य का संकल्प सत् और स्थिर हो तो दुःख नहीं हो सकता। दृढ़ संकल्प और सत्संकल्प से दुःखमुक्ति हो सकती है इसमें संदेह करने की कोई बात नही है। किन्तु फिर भी कई लोगों को इस बात पर विश्वास नही होता कि संकल्प मात्र से दुःख कैसे मिट जाता है। जो लोग मानस शास्त्र के ज्ञाता हैं उनको इसमें तनिक भी संदेह नहीं होता। किन्तु जो मानस-शास्त्र से अनभिज्ञ हैं उनको इसमें संदेह होता है। ऐसे लोगो को समझाने के लिए मै कहता हूं कि क्या विचारों के कारण मनुष्य दुःखी नहीं होते? क्या अपनी अज्ञानता के कारण मनुष्य दुखों का पहाड़ खड़ा नहीं कर लेता? डाकिन लग गई, भूत लग गया आदि विचारो के कारण कितनी स्त्रियां और पुरुप दुःख पाते है, यह आप लोगो से छिपी हुई बात नही है। डाकिन और भूत की बाते सुनकर मन मे भय का संचार हो जाता है। और भय से मनुष्य महान् दुःख पाता है। यदि आपको यह बता दिया जाय कि अमुक स्थान मे भूत रहता है तो क्या आप उस तरफ जाते हुए हिचकिचायेगे या नही? उस मकान में जाते हुए आपके पर कांपने लगेगे या नहीं? और खास कर रात्रि मे जब अंधेरा हो तब क्या आप उसी हिम्मत और निडरता से उस मकान मे जा सकते हैं जिसमे आप को भूत होने की शंका है। यह सब मानसिक कल्पना का डर है।

मानसिक भय के कारण मैंने अपने जीवन के-संयम जीवन के प्राथमिक पांच मास अकारथ खो दिये थे। दीक्षा लेने

के पूर्व मैंने भूत आदि की कई बातें सुन रखी थीं। उन बातों का मेरे मन पर असर था। दीक्षा लेने पर भी वह असर न मिटा और मै यह समझता था कि अमुक मनुष्य मुझ पर जादू कर रहा है। रात के समय गश्त लगाने वाले लोग चिल्लाते थे तो मैं यही समझता था कि वे मुझ पर जादू कर रहे है। यह सब संसार पक्ष का दोष था। छोटे २ बच्चों के दिमाग में ऐसी भद्दी और गंदी बातें भर दी जाती है कि कभी २ जन्म भर उनका असर नहीं मिटता। मै अपने विचारो से स्वयं दुःखी था। जब वे गलत विचार दूर हो गये तब मेरा दुःख भी मिट गया।

कहने का सारांश यह है कि संकल्प से दुःख होता है और यह बात आप लोगो के अनुभव की भी हैं। संसार मे हजारो मनुष्य ऐसे है जो स्वयं अपने उत्पन्न किये हुए दुःखो से महा दुःखी रहते है और उनका दायित्व दूसरो पर लादते है। दुःखो को उन्होने स्वयं आह्वान किया है किन्तु जवाबदारी अपने सिर पर लेना नही चाहते। हर एक मनुष्य को यह विचार करना चाहिये कि मै अपना जीवन किस प्रकार चला रहा हूं। वास्तव मे जो मनुष्य सच्चे प्रकार से जीवन बिता रहा है वह अपने वर्त्तमान जीवन की ही चिन्ता करेगा, वह निकम्मे संतापमय जीवन की सृष्टि नहीं करेगा, और न मृत्यु से डरने की चिन्ता करेगा। वह तो अपने मन को, अपने विचारो को, अपनी इन्द्रियो को तथा अपनी इच्छाओ को वर्तमान मे ही एकाग्र करेगा। अज्ञानता या झूठी आशंका को क्षण भर भी अपने पास न टिकने देगा।

किन्तु हम देख रहे है कि असंख्य मनुष्य मानसिक परतंत्रता से सदा भयभीत रहते है, अपने मस्तिष्क और हृदय

पर बड़ा भारी बोझ उठाये रहते है और व्यर्थ तड़फते हैं। एक सेठजी थे जो 'मेरा हार्ट फैल हो जायगा, हृदय की धड़कन रुक जायगी' की भावना के उद्वेग से निरंतर परेशान रहते थे। बायें हाथ से हमेशा हृदय को संभाले रहते थे और मानसिक वेदना और उद्वेग से दाहिना हाथ जोरो से हिलाते रहते थे।

किन्तु जब उन सेठजी का भ्रम दूर हो गया और उन्होने शुद्ध अंतःकरण से उन दूषित और संकीर्ण विचारो को भगा दिया वे सुखी हो गये।

हम प्रयत्न करके क्षण क्षण मे उठने वाले व्यर्थ के भावोद्वेगो को रोके; झूठी भावनाओ को रोकें। यह शक्ति हमारे भीतर विद्यमान है। क्योंकि हमारा जीवन हमारे विचारो का फल है। जो दुख भोगना पड़ता है उसका उत्पन्न करने वाला प्रत्येक मनुष्य स्वयं है। जब मनुष्य को यह सिद्धान्त समझ मे आ जायगा तो वह मस्तिष्क के द्वार को व्यर्थ के क्षणभगुर विचारो और उद्देश्यो के लिए बंद रख सकता है। वह प्रतिक्षण आत्मनिरीक्षण करके सुविचारो का ही स्वागत करेगा।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक के सामने अपने दुःख मिटाने की प्रक्रिया बता रहे है कि राजन्! जब मैने दृढ़ संकल्प कर लिया कि मै स्वस्थ हूं, मुझे किसी प्रकार का कष्ट नही है, रोग नहीं है, तब एकदम मुझे निद्रा आ गई।

विचारो को उत्पन्न करने का अत्यन्त सूक्ष्म सामर्थ्य मन मे रहता है। जो संस्कार हमारे अतःकरण के गर्भ भाग मे किसी भी विषय के अंकित हो गये हो, चाहे वे भय के हो या अन्य किसी

दुःख के, उन्हीं विचारो की सृष्टि हमारा मन करता है। उपनिषद् विचारधारा के अनुसार मनोमय कोप में उत्पन्न हुए विचार वहाँ से निकल कर प्राणमय कोष मे हलचल करते है और फिर अन्न-मय कोप मे अर्थात् शरीर मे रासायनिक परिवर्तन करते है।

मन के भय या व्याकुलता के विचार प्राण में क्षोभ उत्पन्न करते है और हृदय की व्यथा को—हृदय की धड़कन को एक दम तीव्र वेग से बढ़ा देते है और फिर शरीर को अत्यन्त व्यथित और दुःखी कर देते है। जब असद् विचारों के वेग से दुःख उत्पन्न होता है तो यह सीधी सी बात है कि सद् विचारो के वेग से दुःख मिटाया भी जा सकता है। अनाथी मुनि दुःख मिटाने की इस कला को जान गये थे। वे इस तत्त्व तक पहुंच गये कि यह दुःख मेरा उत्पन्न किया हुआ है अतः मै ही उसे मिटा सकता हूँ। संसार के दूसरे किसी मनुष्य की शक्ति नहीं है कि वह मेरा दुःख मिटा दे।

अपने दुःख, पीड़ाओ और क्लेशो को शमन करने के लिए समाधान और सांत्वना तथा आश्वासन के लिए दूसरो से आशा मत करो। दूसरो की सहानुभूति और दया पर आधार रखने से हम अधिक दुर्बल होते है, हमारी परवशता बढ़ती है और इस प्रकार अनाथ बन जाते है।

स्त्री-समाज मे मानसिक विचारो की बदौलत दुःख पैदा करने की पद्धति अधिक देखी जाती है। वे मंत्र तंत्रादि पर भी अधिक विश्वास करती है। कई स्त्रियां हम साधु लोगो से यह कहने मे भी नही चूकती कि महाराज ! इस बच्चे पर ओघा फेर

दो, अमुक मंत्र सुना दो आदि। यदि हम जैन साधु मंत्र तंत्र और टोने आदि करने लगें तो न मालूम कितने लोग हमारे पास दौड़े आवें। आप लोगों की अंध विश्वास की पद्धति ने हम साधुओं को भी गिराने का काम किया है। आपका अधः पात तो हुआ ही किन्तु साथ में साधुओं का भी पतन हुआ है। कई साधु लोग भी आप लोगों को प्रसन्न रखने के लिए मंत्र तंत्र के पचड़े में पड़ गये हैं और अपनी आत्म-साधना भूल बैठे हैं। वस्तुतः हम साधुओं के पास परमात्मा के नाम के सिवा आपको देने के लिए और कुछ न होना चाहिए। किन्तु साधु और श्रावक दोनों अपने पद से गिर रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि विचारों के द्वारा दुःख उत्पन्न किये जाते हैं और विचारों से ही नष्ट भी किये जा सकते हैं। हां, यह बात ध्यान देने योग्य है कि बुरे विचार बिना बुलाये आ जाते हैं और भले विचार प्रयत्न करने पर भी कठिनाई से आते हैं। विचारों या संकल्पों के द्वारा बुरी परिस्थिति का निर्माण शीघ्रता से हो सकता है किन्तु भली परिस्थिति का निर्माण बहुत अभ्यास के बाद होता है। इसका कारण है—अनादिकालीन वासना का जोर। जीव चिरकाल से दुःखमय वातावरण का सर्जन करता आ रहा है। अतः इस प्रवाह को रोक कर नवीन प्रवाह चालू करना सहज काम नहीं है।

अनाथी मुनि जैसे समर्थ व्यक्ति ही चिर कालीन वासना के पहाड़ को गिरा कर उसके स्थान मे नूतन सुख भावो की सृष्टि कर सकते है। अनाथी मुनि के उस प्रयत्न की क्या प्रशंसा की जाय जो उन्होने दुःख विदाई की अंतिम रात्रि मे किया था

सद्ज्ञान, सद्विवेक और शुभ अध्यवसायों की उत्कृष्ट रसायन के द्वारा उन्होने शारीरिक वेदना मे ऐसा रासायनिक परिवर्तन किया कि असह्य वेदना मिट गई और उनको निद्रा आ गई।

आधुनिक विज्ञान के युग में लोगों को संकल्प के बल पर उतना विश्वास नही है। किन्तु उनके विश्वास न होने से संकल्प की शक्ति कम नही आंकी जा सकती। जो लोग अनुभवी है और सत्संकल्प का जिनको अभ्यास है वे इस बात की साक्षी देते है कि संकल्प मे अनन्त शक्ति है। आज कल भी कई वैदेशिक विद्वान विल पावर (इच्छाशक्ति) का महत्त्व स्वीकार करते है।

गांधीजी के सम्बन्ध में यह सुनने व पढ़ने में आया है कि एक बार रात्रि में जब डाक्टरो ने उनके रक्त प्रवाह का परीक्षण किया तो वे चिन्तित हो गये और आपस मे कानाफूसी करने लगे। उनकी चेष्टा से गांधीजी बात ताड़ गये और कहा कि आप लोग प्रातः काल पुनः मेरी परीक्षा करियेगा। रात्रि का समय मुझे दीजिये। महरबानी करके रात भर मुझे रामनाम के सहारे छोड़ जाइये। डाक्टरी विद्या और भौतिक गणना पर विश्वास रखने वाले डाक्टर लोगो को रामनाम के सहारे पर गांधीजी जैसी विभूति को छोड़ना अच्छा न लगा। वे इंजेक्शन आदि द्वारा रात्रि में ही इलाज करना चाहते थे। किन्तु हम सब जानते है कि गांधीजी अपने संकल्प बल पर अड़ने वाले व्यक्ति है। वे कब डाक्टरो की बात को मानने वाले थे। उन्होने कह दिया कि अभी क्षमा करो, कल आप मेरी पुनः परीक्षा करियेगा। डाक्टर लोग चले गये।

रात्रि में गांधीजी ने न मालूम क्या प्रयोग किया कि प्रातः काल परीक्षण करके डाक्टर लोग दंग रह गये। वे बड़े हैरान थे। उनके दिमाग में इस परिवर्तन का कारण अ ात था। गांधीजी ने बताया कि प्रिय डाक्टरो! आपके इ ाज के सिवा भी एक इलाज है जिसे रामनाम की दवा कहते हैं, वह अचूक है। हां, उ का प्रयोग करने की कला मालूम होनी चाहिये और ईश्वर पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये।

मित्रो! अनाथी मुनि ने जिस शक्ति के जरिये अपना रोग मुक्त किया था वैसा ही कुछ प्रयोग गांधीजी ने भी किया होगा ऐसा अनुमान होता है। गांधीजी संकल्प शक्ति पर विश्वास करते है। इसी बात को कई लोग ईश्वरीय शक्ति भी कहते है।

उपनिषद् में भी संकल्प की बहुत महिमा बताई गई है। उसमें कहा है—स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपासते क्लृप्तान् वै लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः। आदि।

जब आत्मा अपने संकल्प को ईश्वर का रूप प्रदान करता है और उसकी दृढ़तापूर्वक उपासना करता है तब उस संकल्प के आधार से उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य होते है। अर्थात् आत्मा मे परिवर्तन होता है। पूर्व बद्ध कर्म वर्गणा में हलचल मच जाती है। भारी कर्म वर्गणा को हल्की बना देता है। देव गति, मनुष्य गति तिर्यञ्चगति और नरक गति संकल्प से ही प्राप्त होती है और संकल्प से ही मुक्ति भी मिलती है।

यहां पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि संकल्प से मनुष्य बनता है तो मनुष्य लोक को किसने बनाया है? मनुष्य

लोक की रचना भी आत्मिक संकल्प से ही हुई है। यह राजकोट तथा ये भवन मनुष्य के संकल्प से बने हुए है। आत्मा के संकल्प से सारी रचना है।

इस प्रकार यह आत्मा रातदिन कुछ न कुछ संकल्प करता रहता है किन्तु यदि उसकी गति मुड़ कर मोक्षाभिमुखी हो जाय तो ध्रुवत्व प्राप्त हो सकता है।

सत्संकल्प ही ईश्वर है, यह जानकर सत्संकल्प पर डटे रहो। जो मनुष्य इरादे का कच्चा होता है वह कोई काम पूरा नही कर सकता। भक्त तुकाराम ने कहा है किः—

निश्चयाचा बल तुका म्हणे तोंच फल।

इच्छा शक्ति यदि प्रबल हो तो पत्थर के टुकड़े भी किये जा सकते है। संसार और जीवन का उद्गम विचार है। विचार ही संचालक और प्रबंधक है। जीवन भी विचार है। तुम स्वयं विचार के सिवा क्या हो ? मनुष्य को सुखी दुःखी, रोगी नीरोगी, धनवान् निर्धन और भला बुरा रखना उसके विचारो पर आधारित है। यही स्वर्ण सिद्धान्त है जिसको समझने और पालने वाले सदा नीरोग और बलिष्ठ रह सकते है।

आरोग्य और प्रसन्न रहने का रामबाण उपाय अपने ही विचारो में परिवर्तन करना है। विचारो मे परिवर्तन का अर्थ भूतकाल और भविष्य काल पर से विचार हटाकर वर्तमान काल मे केन्द्रित करना है। जिसके मन मे भूतकालीन घटनाओ का विचार है वह भूतकाल मे जीता है जहां उसने असंख्य दुः

और क्लेश भोगे हैं। और जो सदा भविष्य के विचारो में डूबा रहता है वह भविष्य में जीता है जहां संकल्प सृष्टि के सिवा कुछ नहीं है। व्यर्थ की अनेक कल्पनायें कर के मनुष्य दुःखी होता है। किन्तु वास्तव में मनुष्य वर्तमान काल में जीता है जिसे वह भूल रहा है। जिसका वर्तमान काल अच्छा है उसका भूत और भविष्य भी सुधर जाता है। मनुष्य का अधिकार भी तो वर्तमान काल पर ही है। भूतकाल हाथ से निकल गया और भविष्य काल अभी हाथ आया नहीं है। वर्तमान काल हाथ में है। यदि मनुष्य चाहे तो सत्संकल्प के द्वारा उसका सदुपयोग कर सकता है।

नहीं भूत की गम कछु, ना भविष्य को ज्ञान।
अम्मर ताहि सराहिए, जो वरते वर्तमान ॥

अब कोई शंका करे कि भूतकाल की चिन्ता न करना तो ठीक है परन्तु भविष्य को न सोचना, यह समझ में नहीं आता। भविष्य का विचार जरूर करना चाहिये अर्थात् एक बार अपने जीवन का उद्देश्य नक्की करके फिर तदनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिये। बार बार भविष्य की कल्पना करते रहना अच्छा नहीं है। भविष्य की चिन्ता मे शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है। उतना समय यदि वर्तमान को सुधारने के लिए लगाया जाय तो भविष्य अपने आप सुन्दर बनता जाता है।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक के सामने अपना पूर्व इतिहास बताकर यह बता रहे हैं कि हे राजन्! सुख और दुः हमारे विचारों की उपज है। जीव स्वयं सुख दुः का कर्त्ता है और उनका फल भी इसे ही भोगना पड़ता है। संकल्प बल से मेरी

वेदना विनष्ट हुई। मैंने क्षमावान् और निरारंभी बनने का सत्संकल्प कर लिया। पूर्व का असत्संकल्प वर्तमान के प्रबल सत्संकल्प से बाधित हो गया असत् रात, रूप में बदल गया। राजन्! मुझे निद्रा आ गई।

अब एक ऐसे ही सत्संकल्पी और दृढ़ निश्चयी पुरुष का आपको चरित्र सुनाता हूँ जिसे सुनकर आप लोग भी स्थिर विचारवान् बनें। चाहे आंधी हो या तूफान आप अपने विचारों पर दृढ़ रहने का निश्चय करके जीवन सफल बनावें।

सुदर्शन—चरित्र

अवसर देख सेठजी बोले सुनो सुनो बड़ माय।
पंच मात में तुम अयेसर तज दो खोटी बात ॥रे धन०॥
तज दे यह तूफान सुदर्शन! मैं नहीं तेरी माय।
मूर्खी कपिला को भरमाया मुझे छलन तू चाय ॥रे धन०॥

जब सेठ सुदर्शन किसी भी प्रकार से छले न गये तब अभया ने अपना अन्तिम अस्त्र फेंका। वह रोने लगी। रोना भी एक प्रकार का तूफान है। आजकल भी ऐसा तूफान देखा जाता है। किसी को हर्ष या स्वाभाविक प्रेम से आंसू आये यह दूसरी बात है किन्तु किसी के मरने पर जो रिवाजी रोना है वह अस्वाभाविक है, कृत्रिम है। इस तरह के रोने में एक स्त्री गाती है और दूसरी छाज़ना लेकर यानी छाती पीटकर रोती है। यह क्या एक प्रकार का तूफान नहीं है? यदि आप लोग इसे तूफान मानते हैं तो बंद क्यों नहीं कर देते? कई बहिनें कहती हैं कि संघ मिलकर इस

प्रथा पर प्रतिबंध लगा दे। संघ प्रतिबंध भी लगा दे और बहिनें न मानें तब क्या हो? अतः स्वतः इस बुरी चीज को छोड़ना चाहिये। संघ प्रतिबंध लगा दे और कोई उसका उल्लंघन करे तो संघ किस २ को उपालम्भ देता फिरे। सिंघीजी ने इस तरह रोने का और अपने घर में किसी को रोने देने का त्याग किया है तो क्या जाति वाले उनको जाति-बाहर कर देंगे? अतः संघ-बंधारण की प्रतीक्षा न कर के स्वयं व्यक्तिगत इस प्रथा को बंद कर दिया जाय तो क्या हानि है?

मित्रो! रोना भी दो प्रकार का होता है। एक ऊपरी रोना जो केवल दिखावे के लिए होता है। दूसरा आन्तरिक, जो किसी निकटतम स्नेही की मृत्यु से आता है। जिसकी मृत्यु से मन में किंचित् भी क्षोभ, दुःख या समवेदना नहीं है उसके लिए भी केवल उसके सम्बन्धियों को दिखाने के लिए चिल्ला २ कर या विचित्र प्रकार की स्वर लहरी निकाल कर रोना एक प्रकार का उपहास ही है।

ऊपर से रोकर क्या दिखाया जाता है, यह अभया के चरित्र से आपके सामने स्पष्ट है। अभया के हृदय मे क्या बात है और बाहर क्या है, यह आप सुन रहे है। अभया कहती है कि सेठ! तुम बड़े निठुर हो। दयावान् कहलाते हो किन्तु मुझ पर दया क्यों नहीं करते? मै तुम को अपना सर्वस्व सौंपने के लिए उद्यत हूँ फिर भी तुम मुझे नही अपनाते हो? मैं इस प्रकार बिलख रही हूँ किन्तु फिर भी तुम मुझे अपनी शरण मे नही लेते हो।

जब अभया रोने लगी और रोकर सुदर्शन को पुकारने लगी तब उन्होने मौन भंग किया और कहने लगे कि मानाजी!

क्या बात है ? आप मेरी पांच माताओं में सबसे बड़ी मां हैं। आप मुझसे किस इच्छा की पूर्ति करना चाहती हैं ? पुत्र के लिए आपकी क्या आज्ञा है ? मैं आपके सामने पुत्र जैसा हूं इस बात पर खयाल करियेगा।

सत्संकल्प के प्रभाव से सुदर्शन धर्म पर दृढ़ रह सका था। जो धर्म पर डटे रहते हैं उनके लिए शास्त्रकार ने कहा है कि—

देवा वि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो।

जिसका मन धर्म में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होता उस पुरुष को देवगण भी नमस्कार करते हैं।

आप लोग देव को बुलाने के लिए इधर उधर भटकते फिरते हो किन्तु यह नहीं सोचते कि आपने खुद ने देव को दूर भगा रखा है। कल पानी बरसाने के लिए देव का आह्वान किया गया था किन्तु यह नहीं सोचते कि हमने अपने कर्त्तव्य भूलकर देवों को दूर भगा रखा है। एक तरफ लोग भूखों मर रहे हैं। और दूसरी तरफ नाटक सिनेमा मे पैसे बरबाद किये जा रहे हैं। पैसे बरबाद करके लोग दुर्व्यसन में गिर रहे है। क्या यह व्यवहार उचित है ? दुर्व्यसनो मे पड़े हुए लोग देव को बुलाना चाहते हैं और उसके जरिये पानी बरसाना चाहते है। यदि आप लोग अपना कर्त्तव्य अदा करते रहे तो देव आपको ढूंढ़ता फिरेगा। देवको बुलाने के लिए आपको चिल्लाना नहीं पड़ेगा।

अभया से सुदर्शन कहता है कि मेरे पांच मातायें है उनमें तू प्रथम नम्बर की माता है। नीतिशास्त्र मे कहा है—

राजपत्नी गुरुपत्नी मित्रपत्नी तथैव च ।
पत्नीमाता स्वमाता च पंच मातर उच्यते ॥

राजा की पत्नी प्रजा के लिए माता है । प्रजा की रक्षा राजसत्ता से होती है । यदि एक दिन के लिए राजा न रहे तो प्रजा मे अराजकता फैल जावे और सर्वत्र अंधाधुन्धी मच जावे । यदि एक दिन के लिए भी वह घोपणा करवा दी जाय कि आज किसी की किसी प्रकार की शिकायत न सुनी जायगी और आज के सब गुन्हा माफ है तब पता लगे कि कितनी अव्यवस्था और अत्याचार होते हैं । राजसत्ता से अनेक पापी और जुल्म गुजारने वाले लोग दबे हुए है । मैं यह नहीं कहता कि सारे पाप या अत्याचार राजसत्ता के कारण रुके हुए हैं क्योकि मैं जानताहूँ कि राजसत्ता से भी बढ़कर एक धर्म सत्ता है जिसके प्रभाव से भले आदमी अपने आप को पाप व अत्याचार से बचाते हैं । किन्तु फिर भी दुनिया मे अधिकांश लोग ऐसे हैं जो राजसत्ता के कारण पाप व अत्याचार करने से रुके हुए हैं । ऐसे लोगो को एक दिन के लिए भी छूट मिल जाय तो अंधेर मच जाय ।

मेरे कथन का कोई यह अर्थ न लगा ले कि राजा का गुलाम बने रहना । राजा यदि मर्यादा का पालन न करता हो और स्वयं प्रजा पर जुल्म करता हो तो भी उसका अन्याय सहते रहना यह मेरे कथन मे से अर्थ मत लगाइयेगा । मेरा मतलब राज व्यवस्था से है । जो राजव्यवस्था चलाता हो या प्रजा की रक्षा करता हो उसकी पत्नी को माता मानना चाहिये ।

दूसरी माता गुरु की पत्नी है । जिसने एक भी अक्षर

सिखाया हो या कोई बात बताई हो वह गुरु है और उसकी पत्नी माता के समान है।

तीसरी माता मित्र की पत्नी है। जो सुख दुख का साथी है वह मित्र है। ऐसे मित्र की स्त्री को मातावत् मानना चाहिये।

चौथी माता सास है। जब स्त्रीपुरुष संसार की गाड़ी में जुड़ते है तब एक दूसरे की माता को स्वमाता मानना चाहिये। यदि स्त्री पति की माता को अपनी माता के समान मानकर व्यवहार न करे तो गृहस्थ जीवन नरक समान बन जाता है। इसी प्रकार पुरुष भी पत्नी की माता को अपनी माता के समान माने। माता का स्थान प्रथम है और पत्नी का स्थान दूसरा है। यदि पत्नी अपने पति की माता को गाली देती है या अनुचित बर्ताव करती है तो क्या पति पत्नी का यह व्यवहार सहन कर सकता है! भला आदमी यह व्यवहार नहीं सह सकता। कारण कि वह माता को पत्नी से बढ़कर मानता है। किन्तु आज कल इसके विपरीत भी आचरण देखा जाता है। कई लोग पत्नी के कारण निज माता की अवहेलना करते है। मेरा मतलब यह नहीं है कि माता के लिए पति पत्नी आपस में लड़ाई झगड़ा किया करें। किन्तु आपस मे कुछ ऐसा सम्बन्ध होना चाहिये कि दोनो मिलकर माता का उचित सत्कार करे।

जो बात पत्नी पर लागू है वही पति पर भी है। पति भी स्त्री की माता को माता माने। जो लोग इस कर्त्तव्य का पालन नहीं करते हैं उनको लक्ष्य में रखकर ही किसी कवि ने कहा है कि

'जामाता दशमो ग्रह:' जमाई भी एक ग्रह है। नौ ग्रह तो आकाश मे है ही और दसवाँ जमाई के रूप मे पृथ्वी पर है। लोग ससुराल मे जाकर ऐसे बदल जाते है मानो ्ही के राजा हैं। जरा किसी बात में खामी पड़ी कि पारा गरम हो जाता है। तथा जमाई को कितना भी माल दिया जावे वह सदा असंतुष्ट रहता है। कभी कुछ कमी रही कि मुंह चढ़ जाता ह।

क्या इसी का नाम माता पुत्र का सम्बन्ध है ? जो जमाई लोग इस कर्त्तव्य को नहीं निभाते वे विवाह के समय की गई प्रतिज्ञा को भूलते हैं।

चार माताएँ ऊपर बताई गई है। पांचवीं जन्म देने वाली माता है।

सुदर्शन अभया से कहता है कि आप मेरी सब से बड़ी माता है। मेरे सामने मेरी माता दुःखी हो यह मेरे से नहीं देखा जाता। यद्यपि मैं पौषध व्रत मे हूँ तो भी आपका दुः मिटाने के लिए जो उचित मार्ग है अपना सकता हूँ। चुलनीपिता श्रावक पौषध व्रत में था। किन्तु माता का दुख वह दे न सका और डिग गया था। मै भी अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि आपका दुःख मिटाऊं। माताजी ! बताइये कि आपको क्या कष्ट है ? आपका कष्ट वैसा होना चाहिये जिसे एक पुत्र मिटा सकता हो।

सुदर्शन की बात सुनकर रानी सोचती है कि इसका दिल पत्थर का बना हुआ मालूम देता है। मै इसे पिघलाना चाहती थी किन्तु घी हो तब पिघले न ? यह तो पत्थर का बना हुआ है।

अभया का रोना कृत्रिम था ही। उसने चट से रोना बंद करके त्यौरी बदल दी। लाल-लाल आंखें दिखाकर कहने लगी कि सुदर्शन ! यह तूफान छोड़ दे। तेरे इस तूफान से कपिला पुरोहिताइन ठगी गइ थी। लेकिन मैं भ्रम में नहीं पड़ सकती।

अभया के द्वारा कपिला वाली घटना याद करके सुदर्शन विचारने लगा कि मैंने कपिला को क्या गलत उत्तर दिया था। मैने ठीक ही कहा था कि मैं नपुंसक हूं। कारण कि मेरी स्त्री के सिवा अन्य स्त्रियों के लिए मेरे मे पुंस्त्व है ही नहीं। मैं अन्य स्त्रियो को मा बहिन मानता हूँ। माता और बहिन के लिए सभी पुरुष नपुंसक है ही। किन्तु मेरी यह राजमाता मेरे कथन को तूफान मानती है। सचमुच, तूफान मैं कर रहा हूं या यह कर रही है। भगवान् ने जिस विपरीत ज्ञान का वर्णन किया है वह इस माता में जान पड़ता है। जब मनुष्य मे विपर्यय ज्ञान होता है तब वह पदार्थों को अन्यथा रूप से देखने लगता है। इस माता में इस वक्त उल्टा ज्ञान छाया हुआ है अतः मुझे पुत्र रूप में न देख कर अन्य दृष्टि से देखती है।

यह मुझे तूफानी बना रही है और मै इसे तूफान पर चढ़ी हुई मानता हूँ। किन्तु इस बात का निर्णय कौन करे। इससे तर्क वितर्क न कर के मेरा जो स्पष्ट निर्णय है वह इसे सुना दूं।

मेरु डिगे धरती धुजे या सूर्य करे अंधकार।
तो पिण शील छोडूं नहीं माता सच्चा है निरधार ॥रे धन॥

भगवान् महावीर की शरण पकड़ने वाले भगवान् महावीर के श्रावक कैसे होते हैं यह बात सुदर्शन के अटल निश्चय पर

से देखिये। सुदर्शन ने विचार किया कि वाद विवाद करके भी मैं इससे जीत सकता हूँ किन्तु इस वक्त वाद विवाद का अवसर नही है। इस वक्त 'निर्बल के बल राम' का सहारा लेकर निर्बल बनकर मेरा निश्चय इसे सुना दूं।

सुदर्शन ने कहा, माताजी ! मेरु पर्वत कभी डिगता नहीं है, पृथ्वी चलती नही है और सूर्य अंधकार नहीं करता है फिर भी संभव है ये काम कदाचित् इन से बन पड़े। किन्तु सुदर्शन कभी शील का त्याग नहीं कर सकता। मैं निर्मल रहकर शीलव्रत का पालन करुंगा। दूसरा क्या करता है, यह मै नही देखना चाहता। मैं अपना धर्म निभाऊंगा।

एकांगी मग अगम गमन कर
विलमूं छिन छिन छांहे ।

मैं उनका दास हूँ जिन्होने भूतकाल में शीलव्रत का पालन किया है, वर्तमान में करते है और भविष्य में करेंगे। बस इतना कह कर मैं मौन धारण करता हूँ। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

मित्रो ! सुदर्शन की अडिग वृत्ति का क्या कारण है ? वह कहता है कि मेरु, पृथ्वी और सूर्य अपनी मर्यादा छोड़ दे मगर मै अपनी मर्यादा न त्यागूंगा। इस अटलता का कारण संकल्प शक्ति की दृढ़ता है। सुदर्शन का संकल्प कचा-पोचा न था। एक अटल निश्चय था।

शील पालन करने का अटल निश्चय हो तो मेरु पर न'चने कूदने वाले देव और इन्द्र भी खिंचकर पास चले आते हैं। शील पालने वाले में परमात्म-शक्ति आ जाती है।

आप लोग भी यदि सुदर्शन का आदर्श सामने रखकर शील का पालन करेंगे तो कल्याण है।

राजकोट
ता० ८-६-३६